इन्दिरा



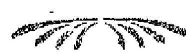
लेखक —

श्रीयुक्त बंकिमचन्द्र चटर्जी



अनुवादक —

पं० जनार्दन झा



सस्ता ग्रन्थ-माला—

इन्दिरा



लेखक

उपन्यास-सम्राट् बाबू बंकिमचन्द्र चटर्जी

अनुवादक

प० जनार्दन झा



प्रकाशक

हिन्दी पुस्तक एजेन्सी
१२६, हरिसन रोड, कलकत्ता

प्रथम बार] सम्वत् १९८० [मूल्य ।)

निवेदन

बंगला उपन्यासके अद्वितीय लेखक स्वर्गीय श्रीयुक्त बङ्किमचन्द्र चट्टोपाध्यायका नाम हिन्दी साहित्य-संसारमें प्रायः किसीसे छिपा नहीं है। करीब करीब उनके सभी ग्रन्थोंका अनुवाद हिन्दी भाषामें हो गया है। हिन्दी-साहित्यके प्रेमियोंने उनकी ग्रन्थावलीके अनुवादका यथेष्ट आदर भी किया है। वह यथार्थमें आदरणीय है भी। इसीसे हिन्दीके पाठक उसपर लट्टू हो रहे हैं। पर खेदके साथ कहना पड़ता है कि कितने ही बङ्गभाषाके अनभिज्ञ अनुवादकोंने अनेक स्थलोंमें उनके लेखका वास्तविक आशय न समझ जटिल भाषामें कुछका कुछ लिख डाला है, जिससे अनुवादमें नीर-सता आ गयी है। जो लोग बंकिम बाबूके बंगला उपन्यासों-को पढ़ चुके हैं उन्हें अपरिष्कृत अनुवाद पढ़नेमें वह आनन्द नहीं आता है जो आना चाहिये; यही सोचकर हमने एक सुयोग्य लेखकसे जो बङ्गला और हिन्दी दोनोंमें निष्णात हैं, सरल हिन्दीमें "इन्दिरा"का रोचक अनुवाद कराकर प्रका-शित किया है। यह सस्ती ग्रन्थमालाका छठा पुष्प है। बङ्किम बाबूके उपन्यासोंमें "इन्दिरा" कैसी सरल और हृदयहारिणी है—यह कहनेकी आवश्यकता नहीं। इसके एक एक वाक्यमें वह माधुर्य भरा है जिसका अनुभव रसिक पाठकगण ही कर सकते हैं। मनोरञ्जनके साथ साथ अनेक शिक्षायें भी मिलती हैं। स्त्रियोंके लिये तो यह और भी सुपाठ्य है।

हम आशा करते हैं कि हिन्दी-उपन्यासके प्रेमी पाठक इस अभिनव इन्दिराका अवलोकनकर अवश्य हमारे आयासको सफल करेंगे।

विनीत—

प्रकाशक



किशोरीलाल केडिया द्वारा
"वणिक् प्रेस"
१, सरकार लेन, (जोड़ाबागान),
कलकत्ते में मुद्रित

इन्दिरा



पहला परिच्छेद

—:—

मैं बहुत दिनोंके बाद पहले पहल ससुराल आ रही थी। मेरी उम्र उन्नीस वर्षकी हो गयी थी, पर मेरा द्विरागमन न हुआ था। इसका कारण यह कि, मेरे पिता धनी थे, ससुरने द्विरागमनका दिन नाईके हाथ भेजा था, पर मेरे पिताने स्वीकार न किया और उत्तरमें कहा कि "समधीजी-से जाकर कह देना कि दामाद पहले कुछ रुपया उपार्जन करना सीखें, उसके बाद बहूको ले जायँ। अभी वह मेरी लड़कीको ले जाकर क्या खिलावेंगे?" यह सुनकर मेरे स्वामीके मनमें बड़ी ग्लानि उत्पन्न हुई। उनकी उम्र उस समय बीस वर्षकी थी। उन्होंने दृढ़ प्रतिज्ञा की कि वे स्वयं धन उपार्जन करके परिवार पालन करेंगे। यह भलीभांति सोच विचारकर उन्होंने पश्चिम प्रदेशकी यात्रा की। उस समय रेलगाड़ी न थी। पश्चिमकी राह बड़ी विकट थी। वे बिना राहखर्च और बिना संगी साथीके

अकेले पैदल चल पड़े। रास्तेकी अनेक कठिनाइयोंको झेलते हुए पञ्जाब जा पहुंचे। जो इतना कष्ट उठा सकता है वह रुपया भी कमा सकता है। मेरे पति उपार्जन करने लगे, खर्चके लिये रुपया घरपर भेजने लगे। परन्तु सात आठ वर्षतक न तो वे घर आये और न उन्होंने मेरी कुछ खोज खबर ही ली। चिन्ता और क्रोधसे मेरा शरीर दिन-दिन सूखा जा रहा था। उन्हें कितने रुपये चाहिये? क्या रुपया बटोरनेमें ही सारी जिन्दगी खतम कर देंगे? मां-बापपर भी क्रोध हुए बिना नहीं रहता। क्यों उन्होंने ताना मारकर रुपया कमानेकी बात कही थी! चूल्हेमें जाय वह रुपया! क्या मेरे सुखसे बढ़कर रुपया ही है? अपने बापके घरमें मैं रुपया लेकर खेला करती थी, मनमें कहती थी, एक दिन रुपये बिछाकर उनपर सोऊंगी, देखूँगी क्या सुख मिलता है? मैंने एक दिन मांसे कहा—"मां, मैं रुपये बिछाकर सोऊंगी।" मांने कहा—"पगली कहांकी!" किन्तु वह मेरे मनका भाव समझ गई। मैं नहीं कह सकती कि उसने कौनसा कौशल रचा और किस तरह अपने जामाताको वहांसे खींच लिया। जिस समयका इतिहास कह रही हूं, उससे कुछ समय पहले ही मेरे स्वामी अपने घर आ गये थे। सर्वत्र इस बातकी शोहरत हो गई कि वे कमसरियटका काम करके असंख्य धन उठा लाये

है। मेरे ससुरने मेरे पिताको लिख भेजा कि—"आपके आशीर्वादसे उपेन्द्र अब बहूके भरण-पोषण करने लायक हुआ, पालकी और कहार भेजता हूं, बहूको यहां भेज दीजिये (मेरे स्वामीका नाम उपेन्द्र था—यहां विवश होकर स्वामीका नाम लेना पड़ा, वृद्धगण क्षमा करेंगे) नहीं तो मैं अपने लड़केका दूसरा ब्याह करा दूँगा।"

मेरे पिताने देखा, बेशक मेरा दामाद अब बड़ा आदमी बन गया। पालकीके भीतर जरदोजी कीमखावकी झांप ओढ़ी हुई रक्खी थी। पालकी उठानेके बांसका मुंह चांदीसे मढ़ा था। वहांसे जो दासी आई थी वह रेशमकी साड़ी पहने हुए थी। गलेमें सोनेका तौक बड़े बड़े नौ दानेका था। काली दाढ़ी वाले चार लट्ठधर भोजपुरिया जवान पालकीके साथ आये थे।

मेरे पिता हरमोहन दत्त राय बड़े आदमी थे, हंसकर बोले, "बेटी इन्दिरा! मैं तुझे नहीं रोक सकता। कुछ दिनके लिये ससुराल जा, फिर शीघ्र ही मैं तुझे ले आऊंगा। सूखे पेड़को फलोंसे लदा हुआ देखकर हँसना नहीं।"

पिताजीकी बातका उत्तर मैंने मनही मन दिया, और कहा, मेरे सूखे हुए हृदय-स्रोतमें आनन्दका प्रवाह देखकर आप भी न हंसियेगा।

मेरी छोटी बहनका नाम कामिनी था। वह शायद उस

बातका मर्म समझकर बोली—बहन, फिर कब आवोगी ?"
इसका जवाब मैंने उसके गालमें सिर्फ चुटकी लेकर दिया।
उसने कहा—"बहन, ससुराल कैसी होती है, क्या यह तुम
नहीं जानती ?"

मैंने कहा—"हां, जानती क्यों नहीं। वह नन्दनकान-
नके समान मनको मोहनेवाली होती है। वहां कामदेव
पारिजात पुष्पका बाण मारकर युवकजनोंके जन्मको
सार्थक करता है। वहां पांव देते ही स्त्री अप्सरा और पुरुष
भेड़ बन जाता है। वहां नित्य कोयल कूकती है, जाड़ेके
समय दक्षिणानलका संचार और अमावसमें भी पूर्णच-
न्द्रका विकास होता है।"

कामिनी हंसकर बोली—"मरना है, और क्या।"

दूसरा परिच्छेद

—:o:—

बहनसे यह आशीर्वाद पाकर मैं ससुराल जानेकी
तैयारी करने लगी। मेरे पिताके घर महेशपुर और मेरे
ससुराल सुन्दरपुरके बीच दस कोसका फासला था।
इसलिये सवेरे कुछ खाकर बिदा हुई थी। मैं यह जानती
थी कि वहां पहुंचते-पहुंचते दो-तीन घड़ी रात जरूर बीत

जायगी। यह सोचकर आंखोंमें आंसू भर आये थे, "रातको मैं अच्छी तरह नहीं देख सकूंगी; वे कैसे हैं; और वे भी रातमें मुझे भलीभांति नहीं देख सकेंगे कि मैं कैसी हूं।" मांने बड़े यत्नसे बाल बांध दिये थे। दस कोस जाते जाते कसा हुआ जूड़ा ढीला हो जायेगा। बाल इधर उधर बिखर जायंगे। पालकीके भीतर पसीने आनेसे मुंहकी वह शोभा नहीं रहेगी। प्याससे होंठपर पानकी लाली फीकी पड़ जायगी। थकावटके मारे शरीरकी कान्ति म्लान हो जायगी, सजा-सजाया सारा श्रृङ्गार बिगड़ जायगा। तुम लोग हंसते हो, मेरे सिरकी सौगन्ध है हंसना मत। मैं भरी जवानीमें पहले पहल ससुराल आ रही थी।

रास्तेमें काला पोखर नामका एक बड़ा तालाब था, जिसका पानी प्रायः आधे कोसतक था। उसका भीटा पहाड़की भांति ऊंचा था। उसके भीतर होकर रास्ता गया था। तालाबके चारों ओर वटके पेड़ थे, जिनकी छांह बहुत ठंडी थी, तालाबका जल काले बादलकी तरह अत्यन्त मनोहर नीला दिखाई देता था। त्रुटि इतनी ही थी कि वहां मनुष्योंका समागम कम था। घाटपर नामनात्र-की एक छोटीसी दूकान थी। तालाबके समीप जो एक बस्ती थी, उसका नाम भी काला पोखर ही था।

इस पोखरको पार करनेमें लोग दल बांधे बिना नहीं आते थे। डकैतीके कारण यह काला पोखर मशहूर हो गया था। दिन दहाड़े डाकू लोग मुसाफिरोंको लूट लेते थे। दूकानदारको लोग डाकूका गुप्त सहायक समझते थे। लेकिन मुझे उसका कुछ भय न था; क्योंकि मेरे साथ बहुत आदमी थे—१६ कहार, चार सिपाही और अन्यान्य लोग थे। जब हम और हमारे साथी लोग यहां पहुंचे, तब दोपहरसे समय अधिक हो चुका था। कहारोंने कहा, "हमलोग कुछ खाये पिये बिना आगे नहीं बढ़ सकते।" सिपाहियोंने रोका, कहा, "यह स्थान ठहरनेयोग्य नहीं है।" कहारोंने कहा—"हमलोग इतने आदमी हैं, हमें डर क्या है?" हमारे साथके आदमियोंने अभीतक कुछ खाया न था। आखिर सब लोग कहारोंकी रायमें राय मिलाकर वहां ठहर गये।

पोखरके घाटपर वटवृक्षके नीचे मेरी पालकी रखी गई। मैं क्रोधके मारे भीतरसे जल उठी। ईश्वरसे यही मनाने लगी कि शीघ्र सुन्दरपुर पहुंचूं। कहार लोग पालकी रख, हाथको जरा ऊपर उठा मैले अंगोछेको घुमाकर हवा करने लगे। वे लोग बहुत थक गये थे। मैं मनमें कहने लगी, बलिहारी है स्त्रीजातिको! मैं इतने कन्धोंपर जा रही हूं और मुझे कन्धोंपर ढोये लिये जा रहे हैं। मैं

यौवनके मदमें मातकर पतिसे मिलने जा रही हूं और ये खाली पेट एक मुट्ठी दानेकी खोजमें जा रहे हैं। उन्हें मैला वस्त्र घुमाकर हवा खाते देख मुझे क्रोध आ गया! क्यों? मैं इस जगह गर्वसे भरी अपनी जवानीको धिक्कार दिये बिना नहीं रह सकती।

यों सोचते २ कुछ देर बाद मैंने जाना कि मेरे साथके लोग यहांसे कुछ दूर चले गये हैं तब मैं साहस पा पालकी-का पर्दा जरा हटाकर तालावकी ओर देखने लगी। देखा, कहार लोग दूकानके सामने एक वटवृक्षकी छायामें बैठकर जलपान कर रहे हैं। वह जगह मेरी पालकीसे करीब डेढ़ दो बीघेके अन्तरपर थी। सामने तिमिराच्छन्न कालो घटाकी भांति सुविशाल पुष्करिणी दूरतक फैली हुई है। उसके चारों ओर पहाड़के सदृश खूब ऊंची और हरी घासोंसे ढके हुए चार भीटे सुशोभित हैं। भीटे और पानीके मध्यकी विस्तृत भूमिमे ऊंचे वटवृक्षोंकी श्रेणी पथिकजनोंकी दृष्टिको अपनी ओर खींच रही है। भीटोंपर बहुतेरी गायें और बछड़े चर रहे हैं। पानीके ऊपर जल-पक्षी आनन्दसे इधर उधर तैर रहे हैं। मृदुमन्द तरङ्गके हिलकोरोंमें स्फटिक मणिकी लड़ी टूटनेका भ्रम हो रहा है। धीमी लहरोंके प्रतिघातसे कमलके फूल, पत्ते और सेवार धीरे धीरे हिल रहे हैं। फिर मैंने देखा कि मेरे

अङ्गरक्षक लोग पानीमें धंसकर नहा रहे हैं। उन लोगोंके अङ्ग चालनसे जो पानीके छींटे इधर-उधर उड़ रहे थे, वे ऐसे सुन्दर मालूम होते थे जैसे काले रङ्गके जलमें सफेद मोतीकी माला तोड़ तोड़कर फेंकी जा रही हो।

आकाशकी ओर आंख उठाकर देखा, क्या ही सुन्दर नीलिमा थी, उसमें कहीं कहीं सफेद बादलके टुकड़े क्या ही सुन्दर दीख पड़ते थे। सभी विचित्र आकारके थे। आकाशमें उड़ते हुए छोटे छोटे पक्षी इस प्रकार शोभा दे रहे थे, जैसे निर्मल आकाशमें किसीने काली बूंदें छिड़क दी हों। मनमें कहा, ऐसी कोई विद्या नहीं है, जिससे मनुष्य पक्षी हो सके! हो सकता तो मैं अभी उड़कर चिरअभिलषित प्रियतमके पास पहुंच जाती।

फिर सरोवरकी ओर नजर फेरकर देखा तो इस बार मैं कुछ डरी, देखा कि, कहारोंके अतिरिक्त मेरे साथके सभी लोग एक ही बार पानीमें जा धंसे हैं। मेरे साथ जो दो औरतें आयी थीं—एक ससुरालकी और दूसरी मायकेकी, वे दोनों भी पानीमें डुबकियां ले रही हैं। भयसे मेरा हृदय कांप उठा—पासमें कोई न था—भयङ्कर स्थानका स्मरण हो आनेसे छाती धड़कने लगी। क्या करती, मैं कुलवधू पालकीके भीतर बैठी थी, मुंह खोलकर किसीको पुकार नहीं सकी।

इसी समय पालकीके दूसरे बगलमें कुछ शब्द सुन पड़ा। जैसे पेड़परसे कोई भारी पदार्थ नीचे धमसे गिरा हो। मैंने उस ओर किवाड़को जरा हटाकर देखा, अरे यह क्या! एक काला, विकट आकारका मनुष्य खड़ा है। डर-कर किवाड़ बन्द कर दिया। किन्तु फिर तुरन्त समझ गयी कि इस समय द्वार खोल रखना ही अच्छा है। लेकिन मेरे द्वार खोलनेके पहले ही फिर एक आदमी पेड़परसे जमीनपर कूद पड़ा। देखते ही देखते दो और कूद पड़े, इस प्रकार लम्बे डीलडौलके चार आदमी एक ही समय पेड़परसे कूदकर झट पालकीको कंधेपर उठा बड़े वेगसे ले भागे।

यह देखकर मेरे साथके सिपाही जो नहा रहे थे, "कौन है—कौन है रे" चिल्लाते हुए पानीसे निकल बेत-हाशे दौड़े।

तब मैंने जाना कि मैं डाकुओंके हाथमें पड़ गयी हूं। यह समय लजानेका नहीं है। मैंने पालकीके दोनों द्वार खोल दिये और पालकीसे कूदकर भागना चाहा परन्तु देखा कि मेरे साथके सभी लोग अत्यन्त कोलाहल करते हुए पालकीके पीछे-पीछे दौड़े आ रहे हैं। आशा हुई, कि ये लोग डाकुओंके हाथोंसे मुझे अवश्य छुड़ावेंगे। सच पूछो तो मैं इसी भरोसेपर रह गयी। किन्तु शीघ्र ही यह

भरोसा जाता रहा, क्योंकि समीपस्थित अन्यान्य वृक्षोंसे डाकू लोग दनादन कूद कूदकर बहुसंख्यक रूपमें दिखायी देने लगे। मैं पहले ही कह चुकी हूं कि पोखरके किनारे बड़के पेड़ोंकी कतार थी। उन्हीं पेड़ोंके नीचेसे होकर वे चारों डाकू पालकी लिये जा रहे थे। उन पेड़ोंपर और डाकू जो पहलेहीसे बैठे थे, एकाएक बन्दरकी तरह नीचे कूद पड़े। उन डाकुओंमें किसीके हाथमें लाठी थी और किसीके हाथमें पेड़की डाल थी।

डाकुओंकी संख्या अधिक देखकर मेरे साथके आदमियोंको आगे बढ़नेकी हिम्मत न हुई, वे डरकर बहुत पीछे रह गये। तब मैंने हताश होकर मनमें सोचा कि अब पालकीसे कूद पड़ना ही अच्छा है। लेकिन पालकी उड़ानेवाले डाकू जिस तीव्र गतिसे पालकी लिये जा रहे थे—उसमें पालकीसे उतर पड़नेपर सख्त चोट लगनेकी आशङ्का थी। इसपर भी मुझे उतर भागनेकी चेष्टा करते देख एक डाकूने मुझे लाठी दिखाकर कहा कि "उतरोगी तो सिर फोड़ दूंगा।" इसलिये मैं चुप हो बैठी।

मैंने देखा कि मेरे साथके एक सिपाहीने लपककर पालकीको पकड़ा। एक डाकूने उसे ऐसी लाठी मारी कि वह मूर्च्छित हो धरतीपर गिर पड़ा, उसे फिर उठते नहीं देखा। मालूम होता है, वह फिर उठा नहीं

जड़ित अलङ्कार पहने कितने हौसलेसे बाल बांधकर, पानसे होंठ लालकर, सुगन्धसे इस अस्पृष्ट प्रफुल्ल शरीरको आमोदितकर, उन्नीस वर्षकी इस तरुण अवस्थाको लेकर स्वामीसे मिलने जा रही थी; क्या कहकर यह अमूल्य रत्न उनके चरणकमलोंमें उपहार दूंगी, यही सब सोचते सोचते जा रही थी—अकस्मात् यह क्या हुआ ? एकाएक वज्राघात ! मनका मनोरथ मनहीमें रहा ! हाय ! गहने सब ले लिये तो ले लिये; फटा, मैला चीथड़ा पहनाया तो क्या हुआ, बाघ-सिंहके मुंहमें छोड़ गया यह भी सही, भूख-प्याससे जान जा रही है जाय; अब जीकर क्या करूंगी; किसी तरह प्राण निकल जाय यही अच्छा है; किन्तु यदि यह प्राण न गया और मैं योंही जीती-जागती रही तो कहां जाऊँगी ? अब तो उनके दर्शन न हुए। मां-बापसे भी शायद अब भेंट न होगी। रोनेसे भी तो जानका छुटकारा नहीं है।

रोनेसे क्या होगा, क्यों रोऊं, यह सोच रही थी, लेकिन आँखसे आँसू रोके नहीं रुकते थे—इसी समय कुछ दूरपर एक भयङ्कर शब्द सुन पड़ा। मैंने समझा, बाघ है। मनमें कुछ हर्ष हुआ। बाघ खा लेगा तो सब ज्वाला बुझ जायगी, अब मरनेमें ही परम सुख है। इसलिये रोना बन्द करके कुछ प्रसन्न होकर स्थिर हो बैठी और बाघके आनेकी प्रतीक्षा करने लगी। जब जब पत्तोंकी खड़-खड़ाहट सुन

पाती, समझती कि सब दुःखोंका हरण करनेवाला बाघ आ रहा है। लेकिन रात बहुत बीत गयी तो भी बाघ नहीं आया। तब मैं हताश हो गयी। मनमें सोचा, जहाँ खूब झुरमुट घना जङ्गल है, वहाँ विषधर साँप जरूर रहते होंगे। यह सोचकर साँपके सिरपर पांव रखनेकी आशासे मैं उस जङ्गलके भीतर घुसी। उस जङ्गलमें इधर-उधर कई बार घूमी, पर जिस आशासे गयी वह पूरी नहीं हुई। सच है, दुखियाको देखकर सभी भागते हैं। जङ्गलमें मैंने कितने ही प्रकारके भयङ्कर शब्द सुने, किन्तु साँपके सिर-पर पैर न पड़े। मेरे पैरोंमें कितने ही काँटे गड़े, देहमें कितनी ही कटीली लतायें लिपटीं, लेकिन उससे क्या! साँप तो पैरोंमें नहीं लिपटा! मैं हताश होकर लौट आयी, भूख-प्याससे व्याकुल थी—इसलिये और नहीं घूम सकी। एक साफ सुथरा स्थान देखकर बैठी। सहसा सामने एक रीछ नजर आया, सोचा, अच्छा—अब रीछके हाथोंसे ही मरूँगी। रीछको खदेड़कर मारने गई, परन्तु उसने मेरी ओर ताकातक नहीं, वह एक पेड़पर चढ़ गया। कुछ देर बाद उस पेड़पर मधुमक्खियोंकी भनभनाहट सुन पड़ी। तब समझ गयी कि इस पेड़पर शहदका छत्ता है, रीछको इसका पता लग गया था, शहद लूटनेके लोभमें पड़कर ही शायद उसने मुझे छोड़ दिया है।

रात्रि शेषमें मेरी आंखें झपक गयीं और मैं एक पेड़के सहारे सो गयी।

चौथा परिच्छेद

जब मेरी नींद टूटी, कौवे काँव काँव कर रहे थे। कोयलें कूक रही थीं। बांसके पत्तोंकी आड़से सूर्यकी छिटकी हुई किरणें आकर धरतीको मानों मणि-मोतियोंसे सजा रही थीं। इस प्रकाशमें सबसे पहले मेरी नजर पड़ी। अपने हाथपर देखा, हाथ बिल्कुल गहनोंसे खाली है! डाकुओंने हाथके सभी भूषण अपहरणकर मेरा विधवाका-सा रूप कर दिया है। बायें हाथकी उंगलीमें लोहेकी एक मुंदरी है, लेकिन दाहिने हाथमें तो कुछ भी नहीं। मैंने रोते रोते एक लता तोड़कर दाहिने हाथमें बांध ली।

इसके बाद मैंने चारों ओर दृष्टि दौड़ाकर देखा। मैं जहां बैठी थी, उसके आस-पास बहुतेरे पेड़ और डालें कटी पड़ी थीं। सोचा, यहां लकड़हारे आया करते हैं तो, गांवमें जानेका रास्ता भी जरूर होगा। दिनका प्रकाश देखकर फिर जीनेकी इच्छा हुई—मनमें कुछ आशाका संचार भी हुआ। उन्नीस बरसकी अवस्था थी! खोजते

खोजते एक बहुत ही अस्पष्ट पगडंडी दिखायी दी। उसी राहको पकड़कर मैं चल पड़ी। ज्यों ज्यों आगे बढ़ती थी, त्यों त्यों रास्ता साफ दिखायी देता था। आशा हुई कि अब गांवमें शीघ्र ही प्रवेश करूँगी।

उस समय फिर एक विपद्की बात याद आ गयी। गांवमें कैसे जाऊँगी? जो फटा-पुराना कपड़ा डाकुओंने मुझे पहननेको दिया था, उससे किसी तरह कमरसे घुटने तक अङ्ग ढंपता था, कमरसे ऊपरका अङ्ग बिल्कुल खुला था, उसके ढांपनेका कोई उपाय न था। मैं ऐसा वेश लेकर कैसे गांवके लोगोंको अपना काला मुंह दिखाऊंगी? नहीं, गांवमें जाना न होगा—यहीं मरना होगा, यही स्थिर किया।

किन्तु सूर्यकी सुनहली किरणें भूमिपर फैली हुई देखकर पक्षियोंका कलरव सुनकर, हरी हरी लताओंमें रङ्ग-बिरङ्गे फूलोंको झूलते हुए देखकर फिर भी जीनेकी इच्छा प्रबल हुई। तब मैंने पेड़ोंसे कई एक चौड़े पत्तोंको तोड़कर उन्हें तिनकोंसे गूँथकर बड़े आकारमें बनाया और उसे गलेसे कमरतक लपेट लिया। उससे किसी तरह लज्जाका निवारण हुआ, लेकिन मैं पगली सी दीखने लगी। दूसरा उपाय ही क्या था? फिर उसी राहको पकड़कर चली। कुछ दूर आगे जानेपर मुझे गाय-बैलोंके

हुङ्कारनेकी आवाज सुन पड़ी । समझा, गांव नजदीक है।

किन्तु साहस करनेपर भी अब पांव आगे न बढ़ता था। कभी पैदल चलनेकी आदत नहीं, उसपर सारी रात जगी रही, रातका वह मानसिक और शारीरिक कष्ट; भूख-प्याससे बेहोश होकर मैं रास्तेके किनारे एक पेड़के नीचे लेट गयी। लेटते ही नींद आ गयी।

मैंने सपना देखा कि मैं मेघपर बैठकर इन्द्रलोकको गयी हूं। वहीं मेरी ससुराल है। स्वयं कामदेव मेरे स्वामी हैं—रति मेरी सौतिन है। पारिजातका फूल लेकर मैं उसके साथ विवाद कर रही हूं। इसी समय किसीके स्पर्शसे नींद टूट गयी। देखा, एक युवा पुरुष खड़ा है; जान पड़ा, वह कोई नीच जाति, कुली-मजदूरोंकी श्रेणीका मनुष्य था। वह मेरा हाथ पकड़कर खींचने लगा! सौभाग्यसे वहां एक लकड़ी पड़ी थी; उसे उठाकर मैंने खूब जोरसे उसके सिरपर मारी। नहीं जानती, मेरे हाथमें उतनी ताकत उस वक्त कहांसे आ गयी। वह पापी पुरुष सिरपर हाथ रख वहांसे भागा।

मैंने उस लकड़ीको नहीं फेंका, उसके सहारे धीरे धीरे वहांसे उठ चली। बहुत दूर पैदल चलनेपर रास्तेमें एक बूढ़ी स्त्री मिली। वह गायको खदेड़े लिये जा रही थी।

मैंने उससे पूछा कि महेशपुर कहां है? और सुन्दरपुर

यहांसे किधर है? वृद्धाने मेरी ओर ताककर कहा—"बेटी, तुम कौन हो? ऐसी खूबसूरत लड़की क्या राह-घाटमें यों अकेली घूमती है? अहा, कैसा सुन्दर रूप है! चल, तू मेरे घरपर चल।"

मैं उसके घर गयी। उसने मुझे भूखी देखकर गायका थोड़ा सा दूध पीनेको दिया। वह महेशपुर जानती थी। मैंने उससे कहा, "मैं तुझे रुपये दिलाऊंगी, तू मुझे वहां पहुंचा दे।" उसपर वह बोली कि मैं अपना घर द्वार छोड़-कर तेरे साथ कैसे जाऊंगी? उसने महेशपुरका जो रास्ता बता दिया, मैं उसी रास्तेसे जाने लगी। दिनभर चलती रही। उससे बड़ी थकावट मालूम हुई। सांझ हो जानेपर मैंने एक पथिकसे पूछा—"महेशपुर यहांसे कितनी दूर है?" वह मुझे देखकर ठिठक गया; कुछ देरतक सोचकर बोला, "तुम कहांसे आ रही हो?" जिस गांवकी बुढ़ियाने मुझे रास्ता बताया था, मैंने उस गांवका नाम लिया। पथिकने कहा—"तुम राह भूल गयी, बिलकुल उलटी आयी हो। महेशपुर यहांसे एक दिनका रास्ता है।"

मेरा सिर चकरा गया। मैंने उससे पूछा—"तुम कहां जाओगे?" वह बोला, "मैं यहांसे करीब ही गौरीपुर गांवमें जाऊंगा।" मैं अगत्या उसके पीछे पीछे चली।

गांवमें पहुंचकर उसने मुझसे पूछा—"यहां तुम किसके घर जाओगी?"

मैंने कहा—"मैं यहां किसीको नहीं पहचानती। किसी पेड़के नीचे सो रहूंगी।"

पथिक—"तुम्हारी जाति क्या है ?"

मैंने कहा—"कायस्थ।"

उसने कहा—"मैं ब्राह्मण हूं। तुम मेरे साथ आओ। मैला, फटा, पुराना कपड़ा पहने रहनेपर भी तुम किसी बड़े घरकी लड़की मालूम होती हो। छोटे घरमें ऐसा रूप नहीं पाया जाता।"

हाक रूप! रूपकी प्रशंसा सुनकर मैं जल उठी। लेकिन वह ब्राह्मण बूढ़ा था, इस कारण निःशङ्क होकर उसके साथ गयी।

मैंने उस रातको ब्राह्मणके घरमें दो दिन बाद कुछ विश्राम पाया। वह दयालु ब्राह्मण गांवका पुरोहित था। पुरोहितीसे अपना संसार चला रहा था। मेरे वस्त्रकी यह अवस्था देखकर उसने आश्चर्यसे पूछा—"बेटी, तुम्हारे कपड़ेकी ऐसी दशा क्यों ? क्या किसीने तुम्हारा कपड़ा ले लिया है ?"

मैंने कहा—"हाँ।"

वे यजमान लोगोंसे बहुत वस्त्र पाया करते थे। मेरी उस हालतपर उन्हें दया उपज आयी। उन्होंने चौड़ी रंगीन पाढ़की एक जोड़ा, शुद्ध-स्वदेशी साड़ी लाकर मुझे पहनने-

को दी। उनके घरमें असंख्य चूड़ियां थीं मैंने वह भी मांगकर हाथोंमें पहन लीं।

किसी तरह इन सब कामोंको तय किया। रास्तेकी थकावटसे अङ्ग अङ्ग टूटे जा रहे थे। ब्राह्मणीने थोड़ा भात खानेको दिया—खाया। एक चटाई दी, जिसे बिछाकर मैं लेट गयी। लेकिन उतनी थकी रहनेपर भी मुझे नींद नहीं आयी। 'मैं कहींकी न रही, अब मेरे लिये जीवनसे हाथ धो बैठना ही अच्छा है।' जीनेसे मरना अच्छा है। रातभर इन्हीं सब बातोंको सोचती रही। जरा भी आंखें न खोलीं।

भोरको जरा नींद आयी। फिर मैंने स्वप्न देखा। देखा कि "सामने एक काले रङ्गका यमदूत खड़ा है, वह दांत निकालकर विकट रूपसे हंस रहा है।" मैं डरकर चौंक उठी, फिर सोई नहीं। दूसरे दिन सवेरे उठकर देखा कि, मेरा सारा शरीर पिड़ा रहा है। अङ्ग अङ्गमें दर्द हो रहा है। दोनों पैर सूज गये हैं; चलने-फिरनेकी कौन कहे, बैठनेकी भी शक्ति नहीं है। जितने दिनोंतक मेरा शरीर पिड़ाता रहा, उतने दिन विवश होकर मुझे ब्राह्मणके घरमें रहना पड़ा। ब्राह्मण और उनकी गृहिणीने बड़े यत्नसे मुझे अपने घरमें रक्खा, पर खेद यह कि महेशपुर जानेका कोई उपाय न सूझा। किसी स्त्रीको महेशपुरका मार्ग मालूम न था और किसीने मेरे साथ जाना भी स्वीकार न किया।

पुरुषोंमें कितने ही साथ जानेको तैयार हुए किन्तु उनके साथ अकेली जानेमें मुझे भय होने लगा। ब्राह्मणदेवने भी मना किया। कहा, "उन सबका चरित्र ठीक नहीं है, उनके साथ मत जाओ। उनके मनका अभिप्राय क्या है, किस मतलबसे साथ जाना चाहते हैं, यह कौन जाने। मैं अच्छे कुल शीलका होकर तुम्हारी जैसी सुन्दरीको वैसे पुरुषोंके साथ कहीं नहीं भेज सकता।" इसलिये मैं भी चुप हो बैठी।

एक दिन सुना कि इस गांवके कृष्णदास नामक एक रईस अपने बाल-बच्चोंके साथ कलकत्ता जायंगे। इसे मैंने उत्तम सुयोग समझा। कलकत्तासे मेरी ससुराल और नैहर अवश्य ही बहुत दूर था; लेकिन वहां मेरे एक नातेदार जो सम्बन्धमें चचा लगते थे, किसी तरहका रोजगार करते थे। मैंने सोचा कि, कलकत्ता जानेसे चचा साहबका पता लग जायगा और वे अवश्य ही मुझे पिताके घर भेज देंगे। न भेजेंगे तो बाबुजीको मेरे आनेकी खबर तो देंगे।

यह बात मैंने पुरोहितजीको जतायी। पुरोहितने कहा, "यह तुमने अच्छा सोचा है, कृष्णदास बाबू मेरे यजमान हैं। मैं तुमको उनके यहां ले जाऊंगा और तुम्हें अपने साथ ले जानेके लिये उनसे कह आऊंगा। वे वृद्ध और बड़े सज्जन हैं।"

पुरोहितजी मुझे कृष्णदास बाबूके पास ले गये। उन्होंने कृष्ण बाबूसे कहा—"यह एक अच्छे घरकी लड़की है, दैवी दुर्घटनामें पड़ मार्ग भूलकर भटकती हुई यहां आ गयी है। यदि आप इसे अपने साथ ले जायं तो यह अपने बापके घर पहुंच सकती है।" कृष्णदास राजी हुए। मैं उनके अन्तःपुर (महाल) में गयी। दूसरे दिन कृष्ण बाबूके घरवालोंसे अपमानित होनेपर भी उनकी स्त्रियोंके साथ कलकत्ताकी यात्रा की। पहले दिन चार-पांच कोस पैदल चलकर गङ्गातट जाना पड़ा। दूसरे दिन हमलोगों-ने नौकारोहण किया।

पांचवां परिच्छेद

मैंने इसके पूर्व कभी गङ्गा नहीं देखी थी। आज गङ्गा-का दर्शनकर हृदय आनन्दसे भर गया। कुछ देरके लिये मैं सब दुःख-सन्ताप भूल गयी। गङ्गाकी क्या ही निर्मल धारा थी। उसमें धीमी धीमी लहरें उठ रही थीं, उनपर सूर्यकी किरणें चमचमा रही थीं; जहांतक नजर जाती थी, वहांतक यही दृश्य दिखायी देता था, तारेमें वृक्षों-की पंक्ति उपवनकी भांति शोभा दे रही थी, तानीमें भांति

भांतिकी नावें इधर-उधर आ रही थीं। नाव खेनेका शब्द नावोंपर नाविकोंका शब्द, जलपथसे जानेवालोंका कोला-हल और प्रत्येक घाटपर लोगोंकी भीड़ तथा उनके परस्पर-का सम्भाषण मनमें एक अपूर्व आनन्द उत्पन्न कर रहा था। अनेक प्रकारके अनेक मनुष्य ; कोई स्नान कर रहा है, कोई पानीमें तैर रहा है, कोई किनारेपर खड़ा होकर तमाशा देख रहा है, और कोई फूल-माला आदिसे गङ्गा का पूजन कर रहा है ; कहीं सफेद बादलकी भांति बालु-कामयी भूमि—उसपर भांति भांतिके पक्षी अनेक प्रकारके मधुर शब्दोंसे श्रोताओंको आनन्द दे रहे हैं। गङ्गा व स्नान में पुण्यमयी हैं। मैं ये सब मनोहर दृश्य कई दिनोंतक अतृप्त नयनोंसे देखती हुई आयी।

जिस दिन कलकत्ता पहुंचूंगी, उसके पूर्व दिन सन्ध्या होनेके कुछ पहले ज्वार आया। नाव आगे न जा सकी। एक अच्छी वस्तीके पासवाले पक्के घाटके बगलमें हमलोगों की नाव जा लगी। वहां क्या ही सुन्दर अच्छे अच्छे दृश्य देखनेमें आये। देखा, मल्लाह लोग बड़े कौशलसे सफेद रङ्गकी बड़ी बड़ी मछलियोंको पकड़कर नावमें रखते जा रहे हैं। पण्डित लोग घाटपर बैठकर शास्त्रीय चर्चा कर रहे हैं। कितनीही सुन्दरी स्त्रियां बनठनकर जल लेने आयी हैं। कोई पानीसे सीढ़ी धोती है, कोई बैठकर सुस्ता रही

है, कोई पानीमें पैठकर कलसीमें पानी भर रही है, कोई बार बार घड़ेमें पानी भरकर फिर उँडेलती है, हंसती है। सब आपसमें तरह तरहके कौतुक करती हैं। यह देखकर मुझे एक पुराना गीत याद हो आया।

आज गयी मैं जल भरनेको देखी अजब बहार।
गोपीगण पनिघटपर ठाढ़ी निरखत नन्दकुमार।
भयीं प्रेम-विह्वल सखियां सब करने लगीं जलकेलि।
भूलि गयीं तनकी सुधि सारी निज प्रियतम संग खेलि

उस दिन जो मैंने दो लड़कियोंको देखा था, उन्हें कभी न भूलूंगी। वे दोनों सात-आठ बरसकी थीं। देखने में अच्छी थीं। बहुत सुन्दरी न होनेपर भी अपनेको गहने-गुड़ियोंसे भली भांति सजाये हुए थीं। कानमें कर्णफूल, हाथमें कंगना और गलेमें हैकल थी। फूल देकर जूड़ा बँधवाया था। दोनों बसन्ती रङ्गका, काली पाढ़वाला कपड़ा पहने हुए थीं। पैरोंमें कड़े और छड़े थे। दोनोंकी कमरपर दो छोटी छोटी कलसियां हैं। वे उतार-भाटाका गीत गाते घाटके ऊपरसे नीचेको उतर आयीं। वह गीत अब भी मुझे कुछ कुछ याद है। वह गान मुझको बहुत मीठा लगा, इसलिये उसके दो एक पद पाठकोंको सुनाता हूं। उन दोनोंमें पहली लड़की एक पद गाती

थी। और दूसरी गीतके आगेका दूसरा पद गाती थी। उन दोनोंका नाम पूछनेसे मालूम हुआ, एकका अमला, और दूसरीका विमला था।

अमला-कैसा हरा खेत धानोंका कैसे इसका गुण गाऊँ ?
चलो सखीरी जल भरनेको जल कलसीमें भर लाऊं ॥

विमला-सुन्दर घाट, बाटमें सुन्दर खिले फूल लखि सुख पाऊं
चलो सखीरी जल भरनेको जल कलसीमें भर लाऊं ॥

अमला-सब सिंगार सजाकर आयी फूलदार जूड़ा छाजें।
चलें चाल मस्तानी हम तुम पैरोंमें बजनू बाजें ॥

विमला—कैसे अच्छे हैं गहने सब, यावक पगमें सोह रहा।
मेरा औ तेरा गाना यह मुनियोंका मन मोह रहा॥

अमला—लड़के खेल छोड़कर दौड़ें सुननेको, जब मैं गाऊं।
वि०-चलो सखीरी जल भरनेको जल कलसीमें भर लाऊं ॥

बालिकाओंका यह भोलापनभरा मीठा गान सुनकर मेरा सन्तप्त हृदय कुछ शीतल हुआ। मुझे मनोयोगसे यह गीत सुनते देखकर कृष्ण बाबूकी सहधर्मिणीने मुझसे पूछा, "यह खाक गाना इस प्रकार मन लगाकर क्या सुन रही हो ?"

मैंने कहा—"इसमें हानि क्या ?"

वह बोलीं—"मरे वह लड़की ! पानी भरने और नूपुर बजनेका भी कहीं गीत गाया जाता है ?

मैंने कहा—ठीक है। सोलह वर्षकी स्त्रीके मुंहसे यह गान सुननेमें सचमुच अच्छा नहीं लगता; किन्तु सात-आठ वर्षकी बालिकाओंके मुंहसे सुननेमें बहुत मीठा लगता है। जवान आदमीके हाथकी चपत किसीको अच्छी नहीं लगती; किन्तु वही तीन-चार वर्षके बच्चेके हाथकी बहुत मीठी मालूम होती है।

कृष्णदासकी पत्नी श्यामा इसपर कुछ न बोल मुंह लटकाकर बैठ रही। मैं मन ही मन सोचने लगी। ऐसा प्रभेद क्यों होता है? एक ही चीज़ दो तरह क्यों लगती है? जो गाली बच्चोंके मुंहसे सुनकर लोग हँस पड़ते हैं, वही जवानके मुंहसे सुनकर क्रुद्ध क्यों होते हैं? जो दीन दरिद्रको देनेसे धर्म होता है, वह धनीको देनेसे खुशामदमें क्यों गिना जाता है? जो सत्य धर्मका प्रधान अंश है, वह किसी समय आत्मश्लाघा या पर-निन्दाके रूपमें परिणत होकर पाप क्यों बन जाता है? जो क्षमा परम धर्म है, पापियोंके प्रति प्रयुक्त होनेपर वह अधर्म क्यों कहलाने लगता है? सचमुच ही यदि कोई पुरुष स्त्रीको जंगलमें छोड़ आवे तो लोग उसे पापी कहेंगे; किन्तु रामचन्द्रजीने जानकीको वन दे दिया, उन्हें किसीने कुछ दोष न दिया, क्यों?

निश्चय किया कि ऐसी अवस्था अवस्थाके भेदसे होती

है। किन्तु यह बात मैंने किसीसे नहीं कही। आगे मुझे संकोचरहित होकर कुछ कहना है, इसलिये इसका उल्लेख करना यहां मैंने आवश्यक समझा।

जल-पथसे कलकत्ता आते समय दूरसे कलकत्ताको देखकर मुझे बड़ा अचम्भा हुआ, मैं कुछ डर भी गयी। महलपर महल, घरके पास घर, असंख्य पचखंडे सतखंडे गगनचुम्बी प्रासाद दूरसे समुद्रकी उत्तुङ्ग तरङ्गकी भांति दिखायी देने लगे। जहाजोंके मस्तूलोंकी भरमार देखकर मेरी सारी सुधि-बुधि खो गयी। ढेरके ढेर जहाजोंको एक साथ देखकर मैंने मनमें कहा, इतने जहाज मनुष्योंने कैसे बनाये*! नज़दीक आनेपर देखा, घाटके पासवाली सड़कों-पर घोड़ागाड़ी और पालकी चींटियोंकी पंक्तिकी तरह एकके पीछे दूसरी जा रही हैं, जो लोग पैदल जा रहे हैं उनकी संख्याकी तो कोई बात ही नहीं। मैंने मनमें कहा, इस अन-संघ, प्रासाद-समुद्रमें चचाजीका पता कैसे चलेगा? कैसे उन्हें ढूंढ़ निकालूंगी? नदीके किनारेकी बालुकाराशिके भीतरसे पहचानी हुई बालूकी कण कैसे खोज निकालूंगी?

---

* कलकत्तामें पहले जितने जहाज थे, अब उनका शतांश भी नहीं है।

छठा परिच्छेद



कृष्णदास कलकत्ता कालीघाट,कालीजीकी पूजा करने आये थे। भवानीपुरमें डेरा किया। मुझसे पूछा—"तुम्हारे चचाका घर किस महल्लेमें है? वे कलकत्तामें रहते हैं या भवानीपुरमें?"

मैंने कहा—"मैं यह नहीं जानती।"

उन्होंने पूछा—"कलकत्तेमें किस जगह उनका बासा है?"

मैं यह सब कुछ नहीं जानती थी। मैं समझती थी, जैसा महेशपुर एक छोटासा गांव है, कलकत्ता भी वैसा ही एक गांव होगा। एक भले आदमीका नाम लेनेसे ही लोग उनका पता बता देंगे। किन्तु यहां तो बात ही और थी। इन अट्टालिकाओंके महासागरमें कौन किसे जानता है! मैंने अपने चचाजीकी खोज करनेका कोई उपाय न देखा। कृष्ण बाबूने मेरे साथ होकर बहुत खोज की, किन्तु कहीं कुछ पता न चला। कलकत्ता जैसे जनारण्यमें एक साधारण गांवके रहनेवालेको इस प्रकार खोज करनेसे क्या पता चलेगा?

कृष्ण बाबू कालीजीकी पूजा करके काशी जायेंगे।

कालीमाईकी पूजा करनेकी जिस प्रकार मन्नत मानी गयी थी, वह उस प्रकार की गयी। अब कृष्ण बाबू काशी जानेका उद्योग करने लगे। मैं रोने लगी। उनकी स्त्री श्यामाने कहा, "तुम मेरी बात सुनो, अब तुम यहाँ किसीके घरमें मजदूरिनका काम करो, रोने धोनेसे कुछ न होगा। आज सुभाके आनेकी बात है, उससे कह दूंगी। वह तुम्हें अपने यहाँ रख लेगी।"

यह सुनकर मैं और भी गला फाड़कर रोने लगी। क्या अन्तमें मुझे मजदूरिनका काम करना ही लिखा था! क्या मैं चाकरी करके पेट भरूंगी! हा दैव! रोते रोते मेरा गला फट गया, मुंहसे लहू गिरने लगा। कृष्ण बाबूको मेरी दशापर दया आयी इसमें सन्देह नहीं, लेकिन उन्होंने कहा—"मैं क्या करूं?" बात सच्ची थी। वे क्या करते! मेरा भाग्य ही बिगड़ा था।

मैं एक घरके भीतर, कोनेमें जाकर सिसक सिसककर रोने लगी। सन्ध्या होनेके कुछ देर पहले श्यामाने मुझे पुकारा। मैं घरसे बाहर होकर उसके पास गयी। उसने कहा—"यह सुभा आयी है। अगर तुम उसके घर दासीका काम करना चाहो तो मैं इससे कह दूँ।"

दासी होकर न रहूंगी, भूखों मरूंगी पर किसीकी सेवा न करूंगी। इसे मैंने पहले ही एक प्रकारसे स्थिर कर

लिया था। किन्तु अब वह बात न रही, सुभाको देखकर मेरे मनका भाव बदल गया। "सुभा" का नाम सुनकर मैंने समझा था कि वह कोई पुरुष होगा, मैं स्त्री होकर उसके पास कैसे रहूंगी। अब देखा, वह पुरुष नहीं, स्त्री है। स्त्रियोंमें कुछ ऐसी-वैसी नहीं, बड़ी प्रसन्नमुखी थी। उसका स्वरूप दर्शनीय था। ऐसा सुन्दर रूप शायद इसके पहले मैंने कभी नहीं देखा था। वह मेरे ही समान वयस-की थी। उसका वर्ण भी मेरे शरीरके वर्णसे मिलता-जुलता था। भूषण-वस्त्र भी कुछ वैसा न था। कानमें झूमक, हाथमें बाला, गलेमें गोप, और कुछ नहीं, पहिरावे-में काली पाढ़की एक सफेद साड़ीमात्र थी। इतनेहीसे उसकी शोभा देखनेयोग्य थी। किसी कविने बहुत ठीक कहा है—

अधरे नववीटिकानुरागो नयने कज्जलमुज्ज्वलं दुकूलम्।
इदमाभरणं नितम्बिनी नामितरद् भूषणमङ्गदूषणाय॥

ऐसा सुन्दर मुंह मैंने कभी नहीं देखा था, मानों खिला हुआ कमल था। बड़ी बड़ी आंखें, हँसती हुई सी जान पड़ती थीं। बन्धूक-पुष्पके सदृश लाल होंठ, कहाँतक प्रशंसा की जाय, उसके सभी अङ्ग सुडौल थे। उसके चेहरेपर ऐसी क्या जादू भरी थी, जिसने मेरे मनको अपनी ओर खींच लिया। पाठकोंको यह स्मरण कराना न होगा

[illegible] नहीं, स्त्री हूं। मुझे भी किसी दिन अपने सौन्दर्यका गर्व था। पर इसके सौन्दर्यको देखकर मुझे [illegible] अपनी सुन्दरताके गर्वपर लज्जा आने लगी। सुभाके साथ एक तीन वर्षका लड़का था। वह भी वैसा ही एक अध-खिले फूलकी तरह सुन्दर था जिसे देखकर आंखें अटक जाती थीं। वह इतना चञ्चल था कि पलभर भी स्थिर नहीं रहता था, उठता था, बैठता था, नाचता था, खेलता था, हँसता था, रोता था, गाता था, झूमता था, ठुमक ठुमककर चलता था, अपनी मांको मारता था और फिर सबका आदर करता था।

मैं टकटकी बाँधकर सुभा और उसके बच्चेकी ओर देखने लगी। यह देखकर श्यामा क्रुद्ध हो उठी, बोली —"बातका जवाब नहीं देती, क्या सोच रही हो?" मैंने पूछा—"ये कौन हैं?"

श्यामाने चिढ़कर कहा—"क्या यह भी कह देना होगा? यह सुभा है और कौन?" सुभाने जरा हंसकर कहा—"तो मौसी, मेरा कुछ परिचय इसे मालूम होना चाहिये। यह बेचारी अभी नयी आयी हुई है, मुझे नहीं पहचानती, इसीसे पूछा है।" यह कहकर सुभा मेरे मुँहकी ओर ताककर बोली—"अच्छा, मैं कहती हूं सुनो, मेरा नाम सुभाषिणी है। यह मेरी मौसी हैं। मुझको बचपनसे ही ये

सुमा कहती हैं।" इसके बाद श्यामाने कथाका सूत्र अपने हाथमें ले लिया, बोली, कलकत्ताके एक नामी आदमी रामदत्तरायके लड़केके साथ इसका ब्याह हुआ है। ये लोग साधारण नहीं हैं, उनकी गिनती कलकत्ताके रईसोंमें होती है। यह छोटी अवस्थामें ही ससुराल आयी, तबसे यहीं है, मैंने फिर कभी इसे देखा नहीं। मैं कालीघाट आयी हूं, यह सुनकर मुझसे मिलने आयी है। ये लोग बड़े आदमी हैं। इनके घरमें तुम ठीकसे काम-धन्धा कर सकोगी न?"

मैं मुन्शी हरमोहन दत्तकी बेटी, मैंने ही एक दिन रुपयेकी गद्दीपर सोना चाहा था—"मैं बड़े आदमीके घरमें काम धन्धा कर सकूँगी?" सुनकर जी जल गया। आंखोंमें आंसू, साथ ही मुंहमें हँसी भी आ गयी। यह और किसीने नहीं—सुभाषिणीने देखा। मौसीसे कहा—"मैं यह सब बात इसे आड़में ले जाकर कहे देती हूं। अगर यह रहना कबूल करेगी तो इसे साथ ले जाऊंगी।" यह कहकर सुभाषिणी मेरा हाथ पकड़कर एक घरके भीतर ले गयी। वहां कोई न था। केवल छोटा बच्चा माँके पीछे पीछे दौड़ा हुआ आया। एक चौकी पड़ी थी। सुभाषिणी उसपर बैठी, मुझे भी हाथ खींचकर बिठाया। कहा, मैंने अपना नाम बिना पूछे बतलाया है, क्या तुम न बताओगी बहन? तुम्हारा नाम क्या है?"

मैं पिघलकर मोम हो गयी, भाई! अगर दासीका काम करना पड़े तो इसीका करूं, मनमें इस बातको सोचकर मैंने उससे कहा—"मेरे दो नाम हैं—एक प्रसिद्ध और एक अप्रसिद्ध। जो अप्रसिद्ध है वही इन लोगोंसे कहा है; इस-लिये आपको भी अभी वही नाम बताऊंगी। मेरा नाम कुमुद है।"

बच्चा बोल उठा—"कुमुद?"

सुभाषिणीने कहा—"प्रसिद्ध नाम तो अभी नहीं सुना। जाति तो कायस्थ है?"

मैंने हँसकर कहा—"हाँ, मैं कायस्थिन हूं।"

सुभाषिणीने कहा—"किसकी लड़की, किसकी जोरू, कहाँ घर है, यह सब बात अभी नहीं पूछूंगी। अभी जो कहती हूं, वह सुनो। तुम बड़े आदमीकी लड़की हो, यह मैं समझ गयी हूं—तुम्हारे हाथमें, गलेमें गहनेका चिह्न अब भी मौजूद है। मैं तुमसे दासीका काम न ले सकूँगी। क्या तुम रसोई करना कुछ जानती हो?"

मैंने कहा—"जानती हूं। कच्ची-पक्की, सब बनाना जानती हूं। मायकेमें मेरे हाथकी रसोईको सब कोई सरा-हते थे।"

सुभाषिणी—"हमलोग भी अपने घरमें अपने हाथसे पूड़ी-तरकारी बना लेती हैं, भात भी रांधती हैं। (बीचमें

लड़का बोल उठा—माँ, मैं लान्हता हूं) तब भी कलकत्तेके एक रिवाजके मुताबिक रसोईदारिन भी है। वह घर जाने वाली है, (बच्चा बोला, ओ चल जानेवाली है) मांसे कह कर रखा दूँगी। तुम्हें रसोईदारिनकी तरह रसोई बनाना नहीं पड़ेगा। हम सब भी रसोई बनावेंगी, उसके साथ तुम भी किसी किसी दिन रसोई बना लिया करना। कहो, क्या कहती हो ? राजी हो ?"

बच्चा बोला,—"लाजी हो लाजी !"

मांने कहा—"लाजी नहीं तू पाजी है।"

बच्चा—'मैं लाला हूं। बाबू पाजी।"

"बेटा, ऐसी बात न बोलना।" यह बच्चेसे कहकर सुभाषिणी मेरे मुँहकी ओर ताककर मुस्कुराती हुई बोली, "यह योंही रोज बका करता है।" मैंने कहा—"मैं आपके पास दासी होकर रहनेमें भी राजी हूं।"

"बहन, तुम मुझे "आप" क्यों कहती हो ? कहना हो तो मांजीको कहना। कुछ डर है तो उन्हीं मांजीका। उनका स्वभाव कुछ चिड़-चिड़ा है। उनको खुश रखना होगा। यह तुम कर सकोगी। मैं आदमीको पहचानती हूं। कहो, तुम्हें इस तरह रहना पसन्द है न ?"

मैंने कहा-"पसन्द न होनेसे क्या होगा ? दूसरा उपाय मेरे लिये है दो क्या ?' मेरी आंखोंमें फिर आंसू भर आये

वह बोली—"उपाय है क्यों नहीं ? देखो, असल बात तो मैं भूल ही गयी।" सुभाषिणी दौड़कर मौसीके पास गयी। उससे पूछा—"यह तुम्हारी कौन होती है ?"

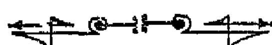
मैंने इतना ही सुना, उसकी मौसीने क्या कहा, वह नहीं सुन पाया। शायद वे मेरे सम्बन्धमें जो कुछ जानती थीं, कहा। पर सच बात तो यह है कि वे मेरे विषयमें कुछ नहीं जानती थीं। पुरोहितसे जितना सुना था, उतने ही तक। बच्चा इस बार मांके साथ नहीं गया। मेरा हाथ थामकर खेलने लगा। मैं उसके साथ बात करने लगी। थोड़ी देरमें सुभाषिणी लौट आयी।

बच्चेने कहा—"मां, देखो, हाथ कैसा लाल है।"

सुभाषिणीने हँसकर कहा, 'मैं तो कबसे न देख रही हूं।" मुझसे कहा-"चलो, गाड़ी तैयार है। ऐसे न चलोगी तो मैं तुम्हें पकड़कर ले जाऊंगी। लेकिन जो बात मैंने कह दी है, उसपर ध्यान रखना होगा—मांजीको खुश रखनेकी कोशिश करनी होगी।"

सुभाषिणी मुझे खींचकर ले गयी और गाड़ीमें बैठी। पुरोहितजीकी दी हुई रङ्गीन पाढ़की दो साड़ियोंमें एक तो मैं पहने हुए थी—और दूसरी अरगनीपर सूख रही थी वह वहीं रह गयी—उसे साथ ले आनेका भी समय उसने न दिया। इसके बदले मैं सुभाषिणीके लड़केको गोदीमें लेकर उसका मुंह चूमते चूमते चली।

सातवां परिच्छेद



सुभाषिणीकी सासको सब कोई मां कहते थे। उन्हें खुश करना होगा। इसलिये जाते ही मैं उन्हें प्रणामकर, उनकी चरण-रज सिरमें लगायी, इसके बाद मैंने साकांक्ष दृष्टिसे एक बार उन्हें देख लिया कि वे किस स्वभावकी हैं। वे उस समय छतके ऊपर अन्धेरेमें एक चटाई बिछाये, सिरके नीचे तकिया दिये पड़ी थीं। एक दासी पांव दाब रही थी। मुझे जान पड़ा, जैसे काली रोशनाईसे भरी हुई एक लम्बी बोतल चटाईपर पड़ी हो। पके हुए सफेद बाल दिनके ढँपनेकी तरह शोभा पा रहे थे। अन्धेरा धीरे धीरे गाढ़ा होता जा रहा था।

मुझे देखकर मांने बहू (सुभाषिणी) से पूछा—"यह कौन है?"

बहूने कहा—"आप एक रसोइया खोजती थीं, इसीसे इसको लेते आयी हूं।"

मां—"इसे कहां पाया?"

बहू—"मौसीने दिया है।"

मां—"ब्राह्मणी है, या कायस्थिन?"

बहू—"कायस्थिन।"

मां—"आह ! तुम्हारी मौसीका कपार ! कायस्थको लेकर क्या होगा ? किसी दिन ब्राह्मणको भात देना हो तो क्या दूँगी ?"

बहू—"रोज तो ब्राह्मणको भात दिया नहीं जाता। जितने दिन चले, चलने दीजिये, उसके बाद बामनी मिलनेपर रख ली जायगी। सो जो हो, बामनकी डकार बड़ी भारी—हमलोग उनके रसोईघरमें पैर दें तो वे हांडी-कूंडी फेंके बिना न रहें। फिर पत्तेपर रसोई परोसते हैं, हमलोगोंकी थाली हाथसे छूतेतक नहीं। ऐसा क्यों करते हैं ? क्या हमलोग चमार हैं ?"

मैंने मन ही मन सुभाषिणीकी बड़ी प्रशंसा की। देखा कि वह स्याहीकी भरी बोतलको अपनी मुट्ठीके भीतर लाना खूब जानती है। मांने कहा, "बेटी, बात तो सच है। छोटे दर्जेके आदमीका इतना अहङ्कार सहा नहीं जाता। तो अब कुछ दिन कायस्थकी लड़कीको ही रखकर देखूं। दरमाहा कितना मांगती है ?"

बहू—"इस विषयमें तो उसके साथ मेरी कोई बात नहीं हुई है।"

मां—"हायरे कलिकालकी बहू! आदमीको रखनेके लिये साथ लायी हो, उसके तनखकी बात पूछी ही नहीं।" मांने मुझसे पूछा, "तुम क्या लोगी ?"

मैंने कहा—"जब आपकी शरण ली है, तब आप जो दीजियेगा, वही लूंगी।"

मां—"बामनीको कुछ बेशी देना पड़ता है, लेकिन तुम कायस्थकी लड़की हो—तुमको तीन रुपया महीना और खाना-कपड़ा दूंगी।"

मुझे तो कुछ अवलम्ब मिल जाना ही यथेष्ट था—इस लिये मैं उसीमें राजी हो गयी। कहना बाहुल्य है कि महीना लेनेकी बात सुनकर दिल रो उठा। मैंने कहा—"अच्छा, वही दीजियेगा।"

समझा, बखेड़ा तय हुआ, लेकिन यह न हुआ। लम्बी बोतलमें स्याही अधिक थी। उसने पूछा, "तुम्हारी उम्र क्या है? अन्धेरेमें उम्रका कुछ अन्दाजा नहीं मिलता, लेकिन स्वर तो जवानके कण्ठ जैसा मालूम होता है।"

मैंने कहा—"मेरी उम्र उन्नीस-बीस वर्षकी होगी।"

बूढ़ी मांने कहा—"बेटी, तो दूसरी जगह काम खोजो, मैं जवान औरतको नहीं रखती। तुम लौट जाओ।"

सुभाषिणी बीचमें ही बोल उठी—"क्यों मां, जवान औरत क्या काम-धन्धा नहीं करती?"

बूढ़ी मां—"हट पगली, जवान औरत क्या अच्छी होती है?"

सुभा०—"मां, आप यह क्या कहती हैं? क्या देश भरकी सभी जवान औरतें खोटी होती हैं?"

बूढ़ी मां—"सो तो नहीं होती—तो भी छोटे घरकी स्त्रियां, जो कमा कर खाती हैं, वे क्या अच्छी होती हैं ?"

अब मैं रुलाईको नहीं रोक सकी, बड़ी देरसे सांस फूल रही थी, मैं रोकर वहांसे उठ गयी। स्याहीकी लम्बी बोतलने बहूसे पूछा, "क्या वह चली गयी ?"

सुभा०—"मालूम तो होता है।"

मां—"जाने दो।"

सुभा०—"गृहस्थके घरसे खाये बिना कैसे जायगी ? उसे कुछ खिलाकर बिदा कर देती हूं।" कहकर सुभाषिणी वहांसे उठकर मेरे पीछे पीछे आयी और मुझे पकड़कर अपने शयनागारमें ले गयी। मैंने कहा—"अब मुझे घेरकर क्यों रखती हो ? पेटके लिये या प्राण-रक्षाके लिये मैं यह सब बातें सुननेके लिये नहीं रह सकूंगी।"

सुभाषिणीने कहा—"रहनेकी जरूरत नहीं ; लेकिन मेरे अनुरोधसे आजकी रात यहां रह जाओ।"

जाती ही कहां ? इसलिये आंख पोंछकर उस रातको वहां रहना स्वीकार किया। इधर-उधरकी बात चलाकर सुभाषिणीने पूछा—"यहां नहीं रहोगी तो कहां जाओगी ?"

मैंने कहा—"गङ्गाकी गोदमें।"

इस बार सुभाषिणीकी भी आंखें डबडबा गईं। बोली, "गङ्गाकी गोदमें जाना नहीं होगा। मैं क्या करती

हूं, वह जरा बैठकर चुपचाप देखो। बीचमें कोई विघ्न मत डालो—मेरी बात सुनो।"

सुभाषिणीने 'हीरा,हीरा' कहकर पुकारा। हीरा उसकी खास दासी थी। हीरा आयी। अच्छी मोटी, छोटी, नाटीसी काली कलूटी, चालीससे कुछ ऊपर उमूकी, खूब हँसनेवाली, हंसी उसके मुंहमें रोके नहीं रुकती थी। उसकी ऐसी विचित्र हँसी देखकर हँसीका कोई कारण न रहते भी सबके मुंहमें हँसी आ जाती थी। पर थी कुछ हुज्जती। सुभाषिणीने उससे कहा—"एक बार उन्हें भीतर आनेको कहला भेजो।"

हीरा—"वे अभी बेवक्त आवेंगे क्या? मैं किससे कहला भेजूं?"

सुभाषिणीने त्योरी चढ़ाकर कहा—"जैसे हो, जाकर उन्हें बुला ला।"

हीरा हँसते हँसते चली गयी। मैंने सुभाषिणीसे पूछा,—"किसको बुला लानेके लिये कहा है? अपने स्वामीको?"

सुभा०—"नहीं तो, क्या महल्लेके सेठ महाजनको इस रातमें बुला भेजूंगी?"

मैंने कहा—"मुझे यहांसे उठ जाना होगा या नहीं, इसीसे पूछा है।"

सुभा०—"नहीं, जानेकी जरूरत नहीं—यहीं बैठी रहो।"
सुभाषिणीके स्वामी आये। अच्छे सुन्दर पुरुष थे। वे आते ही बोले—"क्यों बुलाहट हुई है?" मुझे देखकर सुभाषिणीसे पूछा—"ये कौन हैं?"

सुभाषिणी—"इन्हींके लिये तो आपको बुलाया है। हमलोगोंकी रसोइया बामनी घर जायेंगी। अतएव इनको उसकी जगहमें रखनेके लिये मैं मौसीके पाससे ले आयी हूं। किन्तु मांजी इनको रखना नहीं चाहतीं।"

उसके स्वामीने कहा—"क्यों नहीं चाहतीं?"

सुभाषिणी—"नयी उम्र है, इसलिये।"

सुभाके स्वामी जरा हँसकर बोले—"तो मुझे क्या करना होगा?"

सुभा०—"इनको रखवा देना होगा।"

स्वामी—"क्यों?"

सुभाषिणीने अपने स्वामीके पास जाकर, मैं नहीं सुन सकूँ, ऐसे स्वरमें कहा—"मेरा हुक्म।"

लेकिन मैंने बात सुन ली। उसके स्वामीने भी वैसे ही स्वरमें उत्तर दिया—"तब तो तामील करना ही होगा।"

सुभा०—"कब करोगे?"

स्वामी—"भोजन करते समय।"

उनके जानेपर मैंने कहा—"ये तो मुझे एक प्रकारसे

रखवा चुके, किन्तु वैसा कटुवचन सहकर मैं कैसे रहूँगी ?"

सुभाषिणी—"वह पीछेकी बात पीछे होगी। गङ्गाजी तो कहीं भगी नहीं जातीं।"

रातके नव बजे सुभाषिणीके स्वामी रमण बाबू भोजन करने आये। उनकी मां (स्याहीभरी बोतल) पासमें जा बैठीं सुभाषिणी खींचकर मुझे ले गयी, बोली—"चलो तो देखें, क्या होता है ?"

हम दोनोंने ओटमें खड़ी होकर देखा, अनेक प्रकारकी तरकारियां रमण बाबूके आगे रक्खी हुई हैं। रमण बाबूने उनमेंसे एक एक बार मुंहमें देकर व्यञ्जन-पात्रोंको आगेसे हटा दिया, फिर उन्हें हाथसे छुआतक नहीं। उनकी मांने पूछा,—'बेटा, कुछ भी नहीं खाया।"

बेटेने कहा—"ऐसी खराब रसोई तो भूत-प्रेत भी नहीं खा सकता, महराजिनके हाथकी रसोई खाते खाते अरुचि उत्पन्न हो गयी है। मनमें निश्चय किया है, कलसे फूफीके घर जाकर खाऊँगा।"

बूढ़ी माँ यह सुनकर बहुत दुःखी हुईं, बोलीं,—"ऐसा क्यों करोगे बेटा, अपने किस बातकी कमी है। मैं कल दूसरी रसोईदारिन रख लेती हूं।"

रमण बाबू हाथ धोकर चले गये। यह देखकर सुभाषिणीने कहा— "देखो भाई हमारे लिये आज उनका खाना

नहीं हुआ। भले ही न हो—काम किसी तरह हो जाना चाहिये।"

मैं संकुचित होकर उससे कुछ कह रही थी, उसी समय हीराने सुभाषिणीसे आकर कहा—"आपकी सास बुला रही हैं।" कहकर वह कनखीसे मेरी ओर देखकर हँसी। मैंने समझा, हँसीका उसे रोग है। सुभाषिणी सासके पास गयी, मैं आड़से उन दोनोंकी बातें सुनने लगी।

सुभाषिणीकी सास कहने लगी—"क्या वह कायस्थकी लड़की चली गयी?"

सुभा—"नहीं, अभीतक उसने कुछ खाया पिया नहीं है, इसलिये आज उसे नहीं जाने दिया।"

माँ—"वह रसोई कैसी बनाती है?"

सुभा—"यह मैं नहीं जानती।"

माँ—अच्छा हुआ, आज नहीं गयी। कल उससे कुछ रँधवाकर देखूंगी, वह राँधना जानती है या योंही लोगोंको ठगती फिरती है।"

सुभा—"तो उसे रहनेके लिये कहे आती हूं।"

यह कहकर सुभाषिणीने मेरे पास आकर मुझसे पूछा, "अच्छा यह बताओ बहन, तुम भात राँधना जानती हो न?"

मैंने कहा—"जानती हूं, यह तो कह ही चुकी हूं।"

सुभा—"अच्छी रसोई बना सकोगी न ?"

मैंने कहा,—"कल खाकर देख लेना, अच्छा या बुरा आप ही मालूम हो जायगा।"

सुभा—"अगर अभ्यास न हो तो कहना, मैं पास बैठकर सिखा दूँगी।"

मैंने हँसकर कहा—"अच्छा, यह पीछे देखा जायगा।"

आठवां परिच्छेद

दूसरे दिन मैंने रसोई बनायी। सुभाषिणी दिखलाने आयी थी। मैंने उसी समय लाल मिरचाकी छौंकन दी— वह खाँसते खाँसते उठ भागी। बोली—"अरी! तुमने तो मुझे जानबूझकर मार डाला।"

रसोई तैयार हो जानेपर पहले लड़के-लड़कियोंने खाया। सुभाषिणीका लड़का बहुत छोटा था, वह भात आदि अधिक नहीं खाता था। लेकिन सुभाषिणीकी एक लड़की, जो पांच वर्षकी थी, उससे सुभाषिणीने पूछा, कहो बेटी—"रसोई कैसी हुई है?"

उसने कहा—"वाह! बहुत अच्छी।" मारे खुशीके वह गीत गाने लगी।

सुभाषिणीने डाँटकर कहा—"अभी गीत मत गा। खाते समय गीत नहीं गाना चाहिये।" तब वह चुप हुई।

इसके बाद रमण बाबू खाने बैठे। मैं ओटमें खड़ी होकर देखने लगी। देखा, उन्होंने सब तरकारी एक एक-कर खा ली। बूढ़ी माँका पोपला मुंह खुशीसे खिल गया। रमण बाबूने पूछा—"माँ, आज रसोई किसने बनायी है?"

माँने कहा—"एक नयी पाचिका आयी है।" रमण बाबूने कहा—"रसोई अच्छी बनायी है।" यह कहकर मुंह-हाथ धोकर वे बाहर गये।

तदनन्तर घरके मालिक बूढ़ा बाबू खाने बैठे। मैं उनके सामने नहीं जा सकी। बूढ़ी माँके आदेशानुसार बूढ़ी महराजिन बूढ़े बाबूके लिये भात ले गयी। तब मैं बूढ़ी मांके मनकी बात ताड़ गयी। क्यों वे युवती स्त्रीको रखना नहीं चाहतीं। मैंने प्रतिज्ञा की कि जितने दिन यहाँ रहूँगी, उनकी ओर कभी झांकूँगी भी नहीं।

मैंने पीछे लोगोंसे जिज्ञासा की कि बूढ़े बाबूका चरित्र कैसा है। सभीने उन्हें सच्चरित्र बताया। सभी लोग जानते थे, वे सज्जन और जितेन्द्रिय हैं। तोभी स्याहीकी बोतलके भीतर बिल्कुल स्याही भरी थी।

महराजिनके लौट आनेपर मैंने पूछा—"बूढ़ा बाबू रसोई खाकर क्या बोले?"

महराजिनका मुंह मारे क्रोधके लाल हो गया। वह चिचियाकर बोली—"हां री हाँ! खूब अच्छा राँधा है। खूब अच्छी रसोई बनायी है। हम भी रसोई बनाना जानती हैं। लेकिन बूढ़ी होनेपर अब मेरे हाथकी रसोईका मोलही क्या रहा! आजकल रसोइया बननेके लिये रूप-यौवन चाहिये।"

मैं समझ गई कि बूढ़े बाबूने खाकर रसोईको सराहा है। किन्तु महराजिनजीको लेकर मुझे कुछ तफरीह करनेकी इच्छा हुई। मैं बोली,—"बूढ़ी बहन, तो क्या रूप-यौवन तुम्हें चाहिये? बूढ़ी औरतको देखकर खाना किसे रुचता है।"

दाँत पीसकर कर्कश कण्ठसे महराजिनने कहा,—"मालूम होता है तुम सदा ऐसे ही बनी रहोगी! तुम्हारा रूप-यौवन हमेशा योंही रहेगा? मुंहमें सिकुड़न नहीं पड़ेंगे? दांत नहीं टूटेंगे? सिरके बाल सफेद नहीं होंगे?"

यों कहकर क्रोधसे थरथर काँपती हुई महराजिनजी, हाँड़ी ऊपर रखने गयी। पर ऊपर चढ़ाते समय हांड़ी हांथसे छूटकर नीचे गिर पड़ी और फूट गयी। मैंने कहा—"देखो बहन, रूप-यौवन न रहनेसे हाथकी हाँड़ी फूट जाती है।"

तब महराजिन अर्धनग्न अवस्थामें लकड़ी लेकर मुझे मारने दौड़ी। बुढ़ापेके कारण शायद कानसे कुछ कम

सुनायी देता था, इसीसे मेरी सब बात ठीक ठीक उसे नहीं सुन पड़ी। उसने मेरी बातका घृणित शब्दोंमें उत्तर दिया। मैं भी चुप न रह सकी, बोली—"बहन, जरा ठहर जाओ, लकड़ी हाथमें लिये रहो, क्या ही अच्छी सूरत दिखायी दे रही है!"

इसी समय सुभाषिणीने उस घरके भीतर प्रवेश किया। महराजिन क्रोधमें अन्धी होनेके कारण उसे नहीं देख सकी। मुझे फिर मारनेके लिये आकर बोली—'हराम-जादी! जो मुंहमें आवेगा, वही बोलेगी? लकड़ी मेरे हाथमें न रहेगी तो क्या पैरमें रहेगी? क्या मैं पागल हूं?"

तब सुभाषिणीने भौं तानकर उससे कहा—"मैं एक आदमीको लायी हूं। तुम हरामजादी कहनेवाली कौन? तुम अभी मेरे घरसे निकल जाओ।"

तब महराजिन झटपट हाथसे लकड़ी फेंक, रोनीसी सूरत बनाकर बोली—"बहूजी, आप यह क्या कह रही हैं? मैंने कब इन्हें हरामजादी कहा है? ऐसी बात तो मेरे मुंहसे निकलते कभी किसीने नहीं सुनी। आपने तो गजब कर दिया!"

यह सुनकर सुभाषिणी खिल-खिलाकर हँस उठी। महराजिनजी तब मुँहपर कपड़ा डाल हू हूकर रोते रोते बोली,—"अगर मैंने इसे हरामजादी कहा हो तो मेरा मुंह सड़ जाय, मेरा सत्यानाश हो।"

मैंने कहा—"छिः ! ऐसा भी कोई बोलता है !"

महराजिन—"यमदूत घसीटकर मुझे यमपुरीमें ले जायं—"

मैंने कहा—"यह क्यों बहन, इतने सबेरे सबेरे ! इतनी जल्दी क्या ! अरे और कुछ दिन दुनियामें रहो।"

महराजिन—"अगर मैंने ऐसा कहा हो तो नरकमें भी रहनेको मुझे जगह न मिले—"

इस बार मैंने फिर चुटकी ली, कहा—"बहन, ऐसा न कहो, नरकके लोगोंने यदि तुम्हारे हाथका रींधा नहीं खाया तो फिर नरकमें रहकर ही क्या किया ?"

बूढ़ी महराजिनने रोकर सुभाषिणीके पास नालिश की—"जो इसके मुंहमें आवेगा, वही बोलेगी ! क्या यों ही मेरे साथ छेड़-छाड़ करेगी और तुम कुछ न कहोगी ? मैं मांजीसे कहने जाती हूं।"

सुभा—"सुनो बूढ़ी माई ! तो मैं भी उनसे जाकर कहूंगी कि तुमने इनको हरामजादी कहा है।"

तब बूढ़ी महराजिनने अपने गालमें चपत मारना आरम्भ किया—"मैंने कब हरामजादी कहा ? (पहली चपत) मैंने कब हरामजादी कहा ?" (दूसरी चपत) मैंने कब हरामजादी कहा ? (तीसरी चपत) तीन चपत लगाने-के बाद महाराजीकी इतिश्री हुई

तब मैंने कुछ मीठी बातें कहना आरम्भ किया। पहले मैंने कहा,—"अच्छा, यह तो कहो बहूजी, इन्हें हराम-जादी कहते तुमने कब सुना? इन्होंने यह बात कब कही? मैंने तो नहीं सुनी है।"

महराजिन बोली—"बहूजी, यह सुना न! मेरे मुंहसे ऐसी छोटी बात क्या कभी निकलती है?"

सुभाषिणी—"हो सकता है। बाहरमें शायद कोई किसीसे कह रहा हो, वही मेरे कानोंमें आ पड़ा होगा। महाराजिनजी क्या वैसी औरत हैं, जो ऐसा अपशब्द मुंहसे निकालेंगी, उनके हाथकी रसोई तो कल तुमने खायी थी? इस कलकत्तेभरमें इनके हाथकी सी उत्तम रसोई कोई नहीं बना सकता।"

ब्राह्मणी पाचिका मेरी ओर ताककर बोली—"सुना न?"

मैंने कहा—"यह तो सभी कहते हैं। सचमुच, मैंने वैसी रसोई कभी नहीं खायी थी।"

बूढ़ीके पोपले मुंहमें हंसी आ गयी। बोली—"बेटी! तुम ऐसा क्यों न कहोगी? तुम सयानी औरत हो, भली-बुरी रसोईकी पहचान रखती हो! अहा! ऐसी अच्छी लड़की-को क्या मैं गाली दे सकती हूं। यह किसी बड़े घरकी लड़की है। बेटी, तुम किसी बातकी चिन्ता न करो, मैं तुम्हें रांधना सिखाकर तब जाऊंगी ·

महराजिनके साथ इस प्रकार मेल-मुआफकत हो गयी। मैं बहुत दिनोंसे केवल रोती रहती थी। मैं आज बहुत दिनोंके बाद हँसी। वह हँसी दरिद्रके खजानेकी भांति मुझे बहुत प्यारी लगी। इसीसे महराजिनजीकी बातको मैंने इतने विस्तारसे लिखा है। वह हँसी मैं इस जन्ममें नहीं भूलूंगी और न फिर हँसकर कभी वैसा सुख पाऊंगी।

इसके बाद बूढ़ी माँ खाने बैठीं। मैंने पास बैठकर बड़े यत्नसे उन्हें सब प्रकारकी तरकारियाँ खिलायीं। वह करीब-करीब सब निगल गयीं। अन्तमें बोलीं—"रसोई तो अच्छी बनायी है। रांधना कहाँ सीखा?"

मैंने कहा—"अपने बापके घर।"

माँ—"तुम्हारे बापका घर कहां है?"

मैंने झूठ बात बनाकर कुछ कह दिया। माँने कहा—"यह तो बड़े आदमीके घरकी तरह रसोई बनी है। क्या तुम्हारे बाप बड़े आदमी थे?"

मैं—"हाँ थे।"

मां—"तब तुम रसोई बनानेको क्यों आयी हो?"

मैं—"संकटमें पड़ गयी हूं।"

माँ—"तो मेरे यहां रहो। मजेमें रहोगी। तुम बड़े आदमीकी लड़की हो, मेरे घरमें उसी भांति रहोगी।"

मांजीने पीछे सुभाषिणीको पुकारकर कहा, "बहूजी,

देखना, जिसमें उससे कोई कड़ी बात न कहे। तुम तो कभी कहोगी ही नहीं, तुम वैसे घरकी लड़की नहीं जो कड़वी बात मुंहसे निकालोगी।"

सुभाषिणीका लड़का वहां बैठा था, वह बोल उठा—"मैं कली बात कहूंगा।"

मैंने कहा—बोल तो।

वह बोला—"कली बात कौन खायगा?"

सुभाषिणी—"तेरी सास।"

बच्चा—"छाछ क्या?"

सुभाषिणीकी लड़कीने मेरी ओर उँगली दिखाकर कहा—"यही तेरी सास है।"

तब वह बोला—"कुमुड छाछ, कुमुड मेली छाछ है।"

सुभाषिणी मेरे साथ कोई सम्बन्ध जोड़नेके लिये कई दिनसे मौका ढूंढ़ रही थी। लड़के-लड़कीके मुंहसे यह बात सुनकर उसने मुझसे कहा—"तो आजसे तुम मेरी समधिन हुई।"

घरके सब लोग जब खा-पी चुके, तब सुभाषिणी खानेको बैठी और मैं भी उसके पास ही खानेको बैठी। खाते समय उसने पूछा,—"समधिन, बताओ तो तुम्हारे कितने ब्याह हैं?"

मैं उसके कहनेका मतलब समझ गयी। बोली "रसोई

खाते समय एकाएक द्रौपदीका स्मरण कैसे हो आया?" क्या रसोई द्रौपदीके हाथकीसी लगती है?"

सुभा०—"बहुत ठीक। बहुत ठीक कहा। पाण्डवकी बीबी अव्वल दर्जेकी बवर्चीं थी। अब भी मेरी सासको पहचान सकी या नहीं?"

मैंने कहा—"कुछ कुछ। कंगालकी लड़कियोंका बड़े आदमीकी लड़कियोंके साथ सब लोग कुछ न कुछ प्रभेद जरूर करते हैं।"

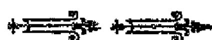
सुभाषिणी हँस उठी, बोली, "तुम्हारा कपार और क्या। मालूम होता है, शायद तुम यही समझ बैठी हो? तुम बड़े आदमीकी लड़की हो क्या इसीसे उन्होंने तुम्हारा इतना आदर किया है?"

मैंने—"हाँ, इसीसे नहीं तो और किससे?"

सुभा०—"उनके बेटे पेटभर खायँगे, इसीसे तुम्हारा इतना आदर होता है। इस समय यदि तुम कोई बहाना करो तो तुम्हारा दरमाहा डबल हो जायगा।"

मैंने कहा—"मैं दरमाहा लेना नहीं चाहती। लेकिन नहीं लेनेसे कोई बखेड़ा खड़ा हो, इसलिये हाथ पसारकर महीना ले लूंगी। लेकर तुम्हारे जिम्मे कर दूंगी। तुम दीन-दुखियोंको दे देना। मुझे तुम्हारा आश्रय मिल गया है, यही मेरे लिये काफी है।"

नवां परिच्छेद



मैंने आश्रय पाया, और एक अमूल्य रत्न पाया—एक हितैषिणी सखी पायी। देखा, कि सुभाषिणी मुझे हृदयसे प्यार करने लगी है। अपनी बहनके साथ जैसा व्यवहार किया जाता है, मेरे साथ वह वैसा ही व्यवहार करने लगी। उसके डरसे दास, दासी भी कभी मेरा अनादर नहीं करती। इधर रसोई की उतनी भीड़-भार मेरे सिर न रहनेके कारण आराम मिलने लगा। वह बूढ़ी महराजिन, जिसका नाम सुलोचना था अपने घर न गयी। उसने सोचा, "चली जानेपर फिर नौकरी न रहेगी, मेरी जगह, कुमुद भरती हो जायगी।" यह सोचकर उसने तरह तरहके बहाने करके घर जानेका इरादा छोड़ दिया। सुभाषिणीकी सिफारिशसे हम दोनों रह गयीं। उसने सासको समझाकर कहा कि कुमुद रईसकी लड़की है, अकेली रसोईका सब भार अपने ऊपर नहीं उठा सकेगी। और सुलोचना भी बूढ़ी है, कहाँ जायगी? सासने कहा—"एक ही कामके लिये दो आदमियोंको कैसे रख सकती हूं? इतना रुपया कहाँसे आवेगा?"

बहूने कहा—"अगर एक ही आदमीको रखना हो तो सुलोचनाको ही रख लीजिये। कुमुदसे उतना काम न हो सकेगा।"

माँ—"नहीं, नहीं, सुलोचनाके हाथका रांधा भात मेरा बेटा नहीं खाता। तो दोनों ही रहें।"

मेरा दुःख हटानेके लिये सुभाषिणीने यह कौशल रचा। बूढ़ी माँ उसके हाथकी कठपुतली थी, जिधर चाहती घुमा देती थी। रमण बाबूकी स्त्री ही तो थी। किसका सामर्थ्य जो उसकी बातको टाले। फिर भी सुभाषिणीकी जैसी तेज बुद्धि थी, वैसा ही सुन्दर स्वभाव था। ऐसी चतुरसङ्गिनीको पाकर मुझे इन दुःखके दिनोंमें भी कुछ सुख मिला।

मैं बड़ी, पकौड़ी आदि दो एक अच्छी तरकारियां बना लिया करती थी, तब जो समय मिलता था, उसमें सुभाषिणीके साथ बात करती; उसके बच्चोंके साथ खेलकर दिल बहलाती थी। न हुआ तो बूढ़ी माँके पास बैठकर कुछ चोंचलापन कर आती थी। किन्तु इस चोंचलापनमें एक भारी बखेड़ा पैदा हो गया। मांजीको विश्वास था कि उनकी उम्र अबतक नयी है। केवल दौर्भाग्य दोषसे उनके सिरके कुछ बाल पक गये हैं। मुंहमें दांत न रहनेके कारण वे लड़कपनमें सुहागा खाना बतलाती थीं

मुंहमें दांत न रहनेका सोच उन्हें उतना न था, जितना पके बालोंका। सफेद बाल उनके सिरसे कोई चुन दे तो वे फिर युवती हो सकती हैं। इसलिये कोई उन्हें मिल जाता और वे अवसर पातीं तो सफेद बाल चुनवाने बैठती थीं। एक दिन इस कामके लिये मुझे बेगारमें पकड़ा। मैं शीघ्र-हस्त थी, इसलिये जल्दी २ सूखे खेतका कपास चुनने लगी। सुभाषिणीने दूरसे यह व्यापार देखकर उँगलीके इशारेसे मुझे बुलाया। मैं माँजीसे छुट्टी लेकर बहूके पास गयी। सुभाषिणीने कहा, "यह क्या कर रही हो? मेरी सासको मुण्डी क्यों बना रही हो?"

मैंने कहा—"इस पापको एक दिनमें खतम कर डालना ही अच्छा है।"

सुभा०—तो फिर तुम टिक सकोगी? कहाँ जाओगी?"

मैं—"मेरा हाथ रोके नहीं रुकता।"

सुभा०—"मर क्यों नहीं जाती! इधर-उधरके कुछ बाल चुनकर क्यों नहीं चली आती?"

मैं—"तुम्हारी सास छोड़ें तब तो।"

सुभा०—"उनसे कहना कि, पके हुए बाल तो अधिक देखनेमें नहीं आते—यह कहकर चली आना।"

मैंने हँसकर कहा—"दिन दहाड़े ऐसी डकैती कैसे की जाय? लोग क्या कहेंगे? क्या कालेतालाबवाली डकैती?"

सुभा०—"कालेतालाबकी डकैती क्या ?"

सुभाषिणीके साथ बात करते समय जरा मैं अपनेको भूल गयी थी--सहसा कालेपोखरकी बात असावधानीमें मुंहसे निकल गयी। बातको मैंने दबा दिया, कहा, "अच्छा यह कहानी दूसरे दिन कहूंगी।"

सुभा०—"मैंने जो तुमसे कहा है, वह उनसे एक बार कहकर देखो न ? यह मेरा अनुरोध है।"

मैं हँसते हँसते मांजीके पास जाकर फिर सफेद बालोंको चुनने बैठी ! कुछ बाल चुनकर बोली, "अब तो पके हुए बाल बहुत देखनेमें नहीं आते। दो-चार रह गये हैं, उन्हें कल चुन दूंगी।"

मांजी हँसकर बोलीं—"कितनी ही आंखकी अन्धी लड़कियां कहती हैं कि सभी बाल पककर सफेद हो गये हैं।"

मैंने कहा—"कहनेवालीकी आंखमें खाक पड़े।"

उस दिनसे मेरा आदर बढ़ गया। लेकिन जिसमे रोज-रोज बैठकर सफेद बाल न चुनने पड़ें मैंने मन ही मन इसका उपाय सोच लिया। मुझे वेतनका रुपया मिला था। उसमेंसे एक रुपया हीराके हाथमें देकर बोली, "एक रुपयेका एक शीशी खिजाब किसीसे खरीदवा कर मंगा दो।" हीरा हँसने लगी। हँसी रुकनेपर बोली—"खिजाब लेकर क्या करोगी ? किसके सिरमें लगाओगी"

मैंने कहा—"महराजिनके।"

यह सुनकर हीरा हँसते हँसते लोट गयी। इसी समय महराजिन वहां आ गयी। तब वह हँसी रोकनेके लिये अपने मुंहमें कपड़े ठूंसने लगी। जब किसी तरह वह अपनी हँसीको नहीं रोक सकी तब वहांसे भागी। ब्राह्मणी बोली—"वह इतना क्यों हँस रही है?"

मैंने कहा—"इसके काम तो कुछ है नहीं। मैंने अभी उससे कहा था कि महराजिनजीके सिरमें खिजाब लगाया जाय तो क्या उनके बाल काले न होंगे? इसीपर वह टूट टूटकर हँसने लगी।"

महराजिन—"इसमें हँसनेकी कौन बात है? खिजाब लगानेमें दोष क्या है? लड़के लोग सनकी लूड़ी कहकर चिढ़ाते हैं, उस आफतसे तो बचूंगी।"

सुभाषिणीकी लड़कीने यों गीत गाना आरम्भ किया—

बूढ़ीके सिरपर खोपा है मानो सनकी लूड़ी।
गोप गलेमें, कानोंमें है झूमक, करमें चूड़ी॥

उमाका भाई बोला—"कलमें चूली"।

शायद यह किसीके हाथकी चूड़ी फोड़ डाले, इस आशङ्कासे सुभाषिणी उसे फुसलाकर दूसरी ओर ले गयी।

मैं समझ गयी, महराजिनको खिजाबका शौक है। मैंने उससे कहा—"अच्छा मैं खिजाब लगा दूंगी।"

महराजिनने कहा—"अच्छा, लगा देना। तुम चिरजीविनी हो, तुम्हारे सोनेके गहने हों। तुम पकवान बनानेमें खूब कुशलता प्र स करो।"

हीरा हँसती थी बहुत, पर थी वह बड़े कामकी औरत। उसने तुरन्त एक शीशी अच्छा खिजाब लाकर मेरे हाथमें रख दिया। मैं उसे लेकर बूढ़ी मांके सफेद बालोंको रंगने लगी।

मांने पूछा—"यह तेरे हाथमें क्या है री?"

मैंने कहा—"एक अर्क है। यह बालोंमें लगानेसे सभी सफेद बाल निकल जाते हैं और काले बाल रह जाते हैं।"

मांने कहा—"ठीक कहो, ऐसा आश्चर्यजनक अर्क तो मैंने कभी नहीं सुना। अच्छा, लगाओ तो देखूं। मगर देखना खिजाब नहीं लगाना।"

मैंने अच्छी तरह उनके बालोंमें खिजाब लगा दिया। कहा कि, पके हुए बाल अब नहीं हैं। कहकर मैं वहांसे मुस्कुराती हुई चली गयी। पन्द्रह मिनटके भीतर उनके सभी बाल काले हो गये। दुर्भाग्यवश हीराकी नज़र घर बुहारते बुहारते उनके काले बालोंपर जा पड़ी। तब वह झाड़ू फेंककर, म हमें कपड़े ठूंस हँसते हँसते सदर मकानके

भीतर गयी। सभी लोग पूछने लगे—"क्या है हीरा? क्या है हीरा?" इस प्रकार एक झमेला लग गया। वह फिर अन्दर महलसे मुंहमें कपड़ा डालकर छतके ऊपर चली गयी। वहां सुलोचना सिरके बाल सुखा रही थी। उसने पूछा, "क्या हुआ है?"

हीरा हँसीके प्रवाहमें पड़ी रहनेके कारण कोई बात मुंहसे न निकाल सकी। सिर्फ सिरपर हाथ रखकर दिखलाने लगी। सुलोचनाने उसके संकेतका कुछ मतलब न समझ नीचे आकर देखा कि मांजीके सिरके सभी बाल काले हो गये हैं। वह पुकारकर रो उठी, बोली—"अरे! यह क्या हुआ! आपके माथेके सभी बाल काले कैसे हो गये है! क्या किसीने खिजाब लगा दिया है?"

इसी समय सुभाषिणीने आकर मेरा हाथ पकड़ लिया और हंसते हंसते बोली—"क्यों री, शैतानकी चरखी, यह क्या किया है, मांजीके सिरमें खिजाब लगा दिया है?"

मैं—"हाँ।"

सुभा०—"तुम्हारा मुंह जले, देखो, अब कैसा बखेड़ा खड़ा होता है?"

मैंने कहा—"तुम निश्चिन्त रहो। कुछ न होगा।"

उसी समय माँने मुझे बुलवाया, पूछा, "क्यों री कुमुद, तुमने मेरे सिरमें खिजाव लगा दिया है?"

देखा, मांजीका मुँह प्रसन्न है। मैंने कहा—"ऐसी बात किसने कही है ?"

मां—"सुलोचनाने।"

मैं—"सुलोचना क्या कहेंगी ? यह खिज़ाब नहीं, एक प्रकारकी दवाई है।"

मां—"बेटी, यह दवाई तो अच्छी मालूम होती है। एक आईना ले आओ, ज़रा देखूं।"

मैंने एक आईना ला दिया। मांने देखकर कहा, "अरे! सभी बाल काले हो गये हैं! अरी खेलवाड़िन! यह क्या किया? सभी लोग कहेंगे कि खिज़ाब लगाया है!"

मांजी हँसी रोकनेकी चेष्टा करके भी हँसी नहीं रोक सकीं। खूब हँसीं। उस दिन, शाम होनेके बाद मेरे हाथकी रसोईकी प्रशंसा करके मेरा वेतन बढ़ा दिया और कहा—"तुम केवल कांचकी चूड़ी हाथमें डाले घूमती हो, देख कर मुझे कष्ट होता है।" यह कहकर उसने अपने हाथोंका चिर परित्यक्त एक जोड़ा सोनेका बाला मुझे इनाम कहकर दिया। लेते समय मानों मेरा सिर फट गया-आंखोंके आंसुओंको नहीं रोक सकी। इसलिये "नहीं लूंगी" कहनेका अवसर न मिला।

एक दिन मौका पाकर बूढ़ी महराजिनने मेरा हाथ पकड़कर कहा—"क्या वह दवाई अब तुम्हारे पास नहीं है?

मैंने पूछा—"कौन दवाई ? उस ब्राह्मणीको अपने पति-को वश करनेके लिये जो दवाई दी थी ?"

महराजिन—"दूर हो, इसीको लड़कपन करना कहते है! मेरे क्या वह सब कुछ है ?"

मैंने कहा—नहीं है ? यह क्या कहती हो ? क्या एक भी नहीं है ?"

महा०—"मालूम होता है, तुम्हारे पाँच पति हैं ?"

मैं—"वह न होनेसे क्या मैं ऐसी अच्छी रसोई बना सकती ? द्रौपदी बने बिना क्या अच्छा भोजन तैयार हो सकता है ? किसी तरह पांचका प्रबन्ध करो, फिर देखो न, तुम्हारे हाथकी रसोई खाकर लोग अपनेको भूल जायँगे ।"

बूढ़ी रसोईदारिनने लम्बी सांस ली, बोली—"एकका तो प्रबन्ध नहीं हो सकता, उसपर फिर पांचका ! मुसल-मानोंमें यह व्यवहार है। जितनी अड़चनें हैं, सब हिन्दू लड़कियोंके लिये। और हो भी तो कैसे ! देखती नहीं हो, सिरके बाल पककर सन हो गये हैं! इसीसे पूछा, वह दवाई और है,जिससे बाल काले होते हैं ?"

मैं—"ओहो ! यही कहती थीं। हां, है तो ।"

मैंने उसी समय खिजाबकी शीशी बूढ़ी महराजिनको दे दी वह रातमें जब खा पीकर सोने गयी तब अन्धेरेमें बैठ

कर बालोंमें लगाने लगी। कुछ बालोंमें लगा, कुछ बालोंमें लगा ही नहीं। कुछ मुंह, आंख और नाकमें लग गया था। सवेरे उठकर जब उन्होंने दर्शन दिये, तब देखा कि उनके बाल पचरङ्गे, बिल्लीके रोमकी तरह कुछ सफेद, कुछ लाल और काले हैं। मुंह लंगूरकी भांति काला दिखायी दे रहा है। देखते ही सब लोग जोरसे हँस उठे। हँसते हँसते लोगोंके पेटमें बल पड़ गये। बूढ़ी पाचिकाको जो जहां देखता था, वह वहीं हँसने लग जाता था। हीरा हँसते-हँसते बेदम होकर सुभाषिणीके पैरोंपर लोट पड़ी और हांफते २ बोली, "बहूजी, मुझे जवाब दो, मैं ऐसी हंसीवाले घरमें न रह सकूंगी, किसी दिन दम फूल जानेसे मर जाऊंगी।"

सुभाषिणीकी लड़कीने भी बूढ़ीको चिढ़ाकर कहा—"बुढ़िया दादी, तुम्हारा रूप ऐसा किसने बना दिया है? बूढ़ी कुछ न बोली।"

एक दिन एक बिल्ली हांड़ीमें मुंह डालकर मछली खाने लगी थी, जिससे उसके मुंहमें कालिख झोल लग गयी थी। सुभाषिणीके लड़केने उसे देखा था। वह बूढ़ीको देखकर बोला, "मां—बुलिया डाडीने हांली खायी है।"

मैंने इशारेसे सभीको मना कर दिया था, इसलिये किसीने बूढ़ी पाचकके नजदीक उस बातको नहीं खोला

वह अज्ञातर भावसे बिल्ली-लंगूरकी मिली हुई छविको लेकर सबके सामने घूमने लगी।

बार बार सबको हंसते देखकर वह लोगोंसे पूछने लगी, "तुम लोग मुझे देखकर इतना क्यों हँसते हो?"

सभीने मेरे बताये इशारेके अनुसार उत्तर दिया, "यह लड़का क्या कह रहा है, सुनती नहीं? कहता है "बुढ़िया दादीने हाँड़ी खायी है।" कल रातको कोई तुम्हारे भोजनालयमें प्रवेशकर हांड़ीमें रक्खी हुई मछली खा गया था, इसीका सब लोग जिक्र करते हैं और तुम्हें देखकर हँसते हैं? भला सुलोचना क्या बूढ़ी उम्रमें ऐसा काम करेगी?"

बूढ़ीने तब गालियोंकी झड़ी लगा दी। हँसनेवालोंको उसने खूब ही कोसा। अनेक प्रकारकी गाली और शाप देकर जब उसका जी कुछ ठण्डा हुआ तब वही रूप लेकर रमण बाबूको भात देने गयी। रमण बाबूको उसकी सूरत देखकर हँसी रोकनेमें बड़ा कष्ट हुआ; वे कुछ भी भोजन न कर सके। यह भी सुना कि रामदत्तरायके आगे रसोई परोसने गयी तो उन्होंने उसका चेहरा देख कुत्तेकी तरह दुर-दुराकर उसे भगा दिया।

आखिर सुभाषिणीने दया करके बूढ़ीसे कह दिया—"मेरे घरमें बड़ा आईना है, जाकर जरा मुंह देख आओ।"

बूढ़ी महराजिनने जाकर आईनेमें मुंह देखा। देखते ही

वह रोने लगी। मैंने उसे समझा बुझाकर कहा—"मैंने बालोंमें लगानेको कहा था, मुंहमें लगानेको नहीं।" बूढ़ीने एक भी न सुनी। मेरा सिर खानेके लिये फिर बार बार यमदूत बुलाये जाने लगे। यह सुनकर सुभाषिणीकी लड़की कहने लगी—"सुन बुढ़िया दादी, जो यमको पुकारता है, उसकी आयु घटती है। जो बूढ़ो मरनेकी बात बोले, उसके मुंहमें खाक पड़े।"

जब बूढ़ी किसी तरह चुप न हुई तब मेरे उस तीन वर्षके जामाता (सुभाषिणीका लड़का) ने चौकेसे एक बेला ले जाकर बूढ़ीकी पीठमें दे मारा। बोला, "मेली छाछको गाली देगी?" बूढ़ी धरतीपर लोटकर चिल्ला-चिल्लाकर रोने लगी। वह जितना ही रोती थी, मेरा छोटा दामाद उतना ही ताली पीट पीटकर नाचता और बोलता था—"मेली छाछ, मेली छाछ।" मैंने गोदीमें उठाकर जब उसका मुंह चूमा, तब वह चुप हुआ।

दसवां परिच्छेद

उस दिन तीसरे पहरको सुभाषिणी मेरा हाथ पकड़कर एक सूनी कोठरीमें ले गयी, मुझे बिठाकर उसने कहा—"तुमने उस कालापोखरकी डकैतीकी बात कहनेका वादा किया था, पर आजतक नहीं कही, आज कह सुनाओ।"

मैं बहुत देरतक चुपचाप सोचती रही, आखिर बोली, "वह मेरे ही दौर्भाग्यकी कहानी है। मेरे बाप बड़े आदमी हैं, यह तो मैंने कहा ही है। तुम्हारे ससुर भी बड़े आदमी हैं,—किन्तु ये उनकी तुलना नहीं कर सकते। मेरे पिता अभी जीते हैं, आज भी उनके फीलखानेमें हाथी झूमते हैं। मैं जो रसोई बनाकर दिन काट रही हूं, इसका कारण कालापोखरकी डकैती ही है।"

यहांतक कहकर मैं चुप हो रही। सुभाषिणी भी कुछ देरतक चुप रहकर बोली, "यदि तुमको कहनेमें कष्ट हो तो मत कहो, मैं यह सब बात नहीं जानती थी, इसीसे सुनना चाहा था।"

मैंने कहा—"सब कह सुनाऊँगी। तुम जो मुझे इतना

प्यार करती हो, तुमने जो मेरा असीम उपकार किया इससे मैं तुमसे कोई बात छिपाना नहीं चाहती। तुमसे अपना दुखड़ा सुनानेमें कुछ कष्ट न होगा।"

मैंने अपने बापका और बापके गांवका नाम न कहा। स्वामी और ससुरका नाम भी न बताया। ससुरालका नाम न लिया और सब कुछ कहा। मेरे दुःखकी बात सुनकर बीच-बीचमें सुभाषिणी रो उठती थी। मेरा भी कहते-कहते बीचमें गला भर आता था।

उस दिन बात यहींतक रही। दूसरे दिन सुभाषिणी फिर मुझे एकान्तमें ले गयी, बोली, "बापका नाम कहना होगा।"

मैंने कह दिया।

"उनका घर किस गांवमें है, यह भी बताना होगा।"

वह भी बता दिया।

"डाकघरका नाम कहो।"

मैंने कहा—"डाकघरका नाम डाकघर और क्या?"

सुभा०—"अरी मुंहजली! जिस गांवमें डाकघर है उसका नाम।"

मैं—"यह मैं नहीं जानती। सिर्फ डाकघर जानती हूं।"

सुभा०—"यह पूछती हूँ कि जिस गांवमें तुम्हारा घर है, उसी गांवमें डाकघर है या दूसरे गांवमें?"

मैं—"यह नहीं जानती।"

सुभाषिणी उदास हो बैठी, और कुछ न बोली। दूसरे दिन फिर उसने उसी तरह मुझको एकान्तमें ले जाकर कहा—"तुम बड़े घरकी लड़की हो, कितने दिन रसोई बनाओगी? तुम्हारे चले जानेपर मैं खूब रोऊंगी-लेकिन अपने सुखके लिये तुम्हें दुःख दूं ऐसी पापिष्ठा मैं नहीं हूं। हमलोगोंने विचार किया है—"

बात काटकर मैंने पूछा—"हमलोग कौन कौन?"

सुभा०—मैं और र-बाबू।

र—बाबू अर्थात् रमण बाबू। सुभाषिणी मेरे पास स्वामीका नाम इसी तरह लेती थी। वह कहने लगी—"विचार किया है कि तुम्हारे पिताको पत्र लिख भेजेंगे कि तुम यहां हो, इसीसे कल तुमसे डाकघरका पता पूछ रही थी।"

मैं—"तो उनसे क्या तुमने सब बातें कह दीं?"

सुभा०—"कह दी हैं—इसमें हानि क्या?"

मैं—"हानि कुछ नहीं—इसके बाद?"

सुभा०—"महेशपुरमें ही डाकघर है, अभी यही निश्चय करके पत्र लिखा गया।"

मैं—"भेजा गया है या नहीं?"

सुभा०—हां, भेजा गया।"

मारे खुशीके मैं फूले अङ्ग न समायी। दिन गिनने लगी। कब पत्रका उत्तर आवेगा? दिन बहुत बीत गये, किन्तु उत्तर न आया। मेरा दुर्भाग्य! महेशपुरमें डाक-घर न था। उन दिनों आज कलकी तरह गांव-गांवमें डाकखाना नहीं था। डाकघर महेशपुरके पास ही किसी गाँवमें था। मैं बापकी दुलारी थी—इतनी खबर नहीं रखती थी। डाकघरका पता ठीक न रहनेके कारण कलकत्तेके बड़े डाकघरमें रमण बाबूकी चिट्ठी खोलकर उन्हें वापस कर दी गयी।

मैंने फिर रोना-खीजना शुरू किया। र—बाबू चुप बैठनेवाले न थे। सुभाषिणीने आकर कहा—"अब स्वामी-का नाम बताना होगा।"

मैंने तब कुछ लिखना-पढ़ना सीख लिया था। स्वामी-का नाम लिख दिया। पीछे श्वशुरका नाम पूछा गया। वह भी बता दिया, ससुरालका नाम भी लिख दिया। डाक घरका नाम पूछनेपर कहा,—"वह मैं क्या जानूं?"

रमण बाबूने वहां भी पत्र लिखा। लेकिन वहांसे भी कोई जवाब नहीं आया। मैं बहुत दुःखी हुई। मुझे उस समय एक बातका स्मरण हो आया; मैंने आशामें पड़कर उन्हें चिट्ठी लिखते नहीं रोका। डाकू मुझे लूटकर ले गये, अब क्या मैं जातिमें ली जा सकती हूं। क्या

समाज अब मुझको ग्रहण कर सकता है? अब क्या मेरी जाति भली होगी, यही सोचकर मेरे श्वशुर और स्वामी अब मुझे ग्रहण नहीं करेंगे। वहां पत्र लिखना अच्छा नहीं हुआ। यह बात सुनकर सुभाषिणी चुप हो रही। मैं अपने भाग्यको कोसती हुई हताश होकर चटाईपर जा लेटी।

ग्यारहवां परिच्छेद



एक दिन सवेरे उठकर देखा, कुछ विशेष आयोजन हो रहा है। रमण बाबू वकील हैं। उनके कोई एक धनी मुअक्किल थे। दो दिनसे सुन रही थी, वे कलकत्ते आये हैं। रमण बाबू और उनके पिता बराबर उनके घर आया-जाया करते थे। उसका कारण यही कि, उनके साथ कारोबारका कुछ सम्बन्ध था। आज सुना कि उन्हें मध्यान्ह भोजनके लिये निमन्त्रण दिया गया है। इसीलिये खाने-पीनेकी सामग्रीका विशेष आयोजन हो रहा है।

रसोई अच्छी होनी चाहिये, इसलिये पाकका भार मेरे ऊपर दिया गया। मैंने बड़े यत्नसे रसोई बनायी। भोजन करनेकी जगह महलके अन्दर ही ठीक की गयी। रामदत्त बाबू, रमण बाबू और निमन्त्रित व्यक्ति भोजन करनेको

एक साथ बैठे। परोसनेका भार बूढ़ी महराजिनके ऊपर था। मैं बाहरके आदमीको रसोई नहीं परोसती थी।

बूढ़ी रसोई परोस रही थी—मैं रसोई-घरमें थी। इसी समय एक बखेड़ा खड़ा हुआ। रमण बाबू बूढ़ी महराजिनको खूब जोरसे डाँट रहे थे। रसोई-घरको एक दासी आकर बोली—"हा! ऐसा कहीं नहीं देखा है। जान-बूझकर मनुष्यको बेवकूफ बनाना।"

मैंने पूछा, "क्या हुआ है?"

दासीने कहा—बूढ़ी "महराजिन लाल बाबू (रमण बाबूको पुराने नौकर सब लाल बाबू कहा करते थे) के कटोरेमें दाल परोस रही थी—उन्होंने यह देखकर भी उहूं उहूं करते हुए कटोरेपर हाथ रख दिया, सब दाल उनके हाथपर गिर पड़ी।"

मैं इधर सुन रही थी, रमण बाबू बूढ़ीको डपटकर कह रहे थे—"परोसना नहीं जानती तो क्यों परोसने आयी और किसीको परोसने देना नहीं चाहती क्या?"

रामदत्त बाबूने कहा—"यह तुम्हारा काम नहीं है। जाकर कुमुदको भेज दो।"

बूढ़ी मां यहाँ नहीं थीं, रोके कौन? इधर वृद्ध मालिकका हुक्म—उसकी उपेक्षा कैसे करती? जानेसे मांजी नाराज़ होंगी, यह भी जानती थी। दो-चार बार मैंने

बूढ़ीको समझाकर कहा—"जाओ, जरा होशियारीके साथ परोस आओ।" किन्तु वह डरके मारे फिर जानेको राजी न हुई। इसलिये मैं हाथ धो, मुंह पोंछ, परिष्कार हो साड़ीको ठीककर घूंघट डाल परोसने गयी। कौन जानता था कि यह सब रचना रची गयी है? मैं समझती थी कि मैं बड़ी चतुरा हूं—पर यह न जानती थी कि सुभाषिणी चाहे तो मुझे बाजारमें ले जाकर बेच डाले और चाहे तो फिर खरीद भी ले।

मैं घूंघट डाले हुए थी, लेकिन स्त्रीका स्वभाव घूंघटके भीतर ढँक नहीं सकता। घूंघटके भीतरसे एक बार मैंने निमन्त्रित बाबूको देख लिया।

देखा, उनकी उम्र लगभग तीस वर्षके होगी। वे गौर-वर्ण और अच्छे डील-डौलके पुरुष थे; उनको देखते ही समझ गयी कि उनका रूप स्त्रियोंका मन हरण करनेवाला है। मैं बिजलीकी चमककी भांति कुछ देरके लिये आत्म-विस्मृत हुई, मेरा मन कुछ क्षणके लिये हाथसे निकल गया। मांसका बर्तन लेकर कुछ देर खड़ी रही। मैं घूंघटके भीतरसे उनकी ओर देख रही थी, इसी समय उन्होंने सिर उठाया, देखा कि मैं घूंघटके भीतरसे उनकी ओर ताक रही हूं। मैं सीधी चितवनसे उन्हें देख रही थी। मैंने अपने जानते तो उनके प्रति किसी प्रकारके

कुटिल कटाक्षका प्रक्षेप न किया। उतना पाप इस हृदयमें था भी नहीं। साँप भी शायद जान-बूझकर फण नहीं काढ़ता, समयपर आप ही उसका फण निकल आता है साँपका हृदय भी पापरहित हो सकता है अर्थात् फण निकल आनेपर भी उसको किसीके डसनेकी इच्छा नहीं रहती। मालूम होता है, मेरे मनका भाव शुद्ध रहनेपर भी उन्होंने उस सीधी चितवनको शायद कुटिल कटाक्षके रूपमें देखा होगा। पुरुष लोग कहा करते हैं कि अंधेरेमें चिरागकी तरह, घूंघटके भीतर रमणीकी कटाक्ष अधिक तीव्र दीख पड़ती है। जान पड़ा, ये भी उसी तरह देख पावेंगे। उन्होंने जरा हँसकर सिर नीचा कर लिया। उस हँसीको सिर्फ मैंने देखा। मैं सब मांस उनकी थालीमें डालकर चली गयी।

मैं कुछ लजायी और कुछ दुःखी भी हुई। मैं सधवा होकर भी जन्म-विधवा थी। विवाहके समय सिर्फ एक बार मुझे स्वामीके दर्शन हुए थे फिर कभी नहीं। इसलिये ये युवावस्थाकी सारी प्रवृत्तियां मनके भीतर यों ही खाली पड़ी थीं। अब गहरे जलमें आघात लगनेसे मानों तरङ्ग छूट चली, यह सोचकर मैं बहुत चिन्तित और उदास हुई। मन ही मन स्त्री-जन्मको कोटि कोटि धिक्कार दिये। अपनेको भी बार बार धिक्कार दिया मनके भीतर मारे ग्लानिके मानों मैं मर गयी।

रसोई-घरमें लौट आनेपर मेरे मनमें हुआ, जैसे मैंने पहले कभी इनको कहीं देखा हो। सन्देह मिटानेके लिये फिर मैं ओटमें खड़ी होकर उन्हें देखने गयी। खूब गौर करके देखा, मनमें कहा—"हां, इन्हें पहचाना।"

इसी समय रामदत्त बाबूने फिर अन्यान्य खाद्यकी सामग्रियां दे जानेके लिये मुझे बुलाया। कई किस्मकी मछली मांस पकाये थे—ले गयी। देखा, मेरी उस चितवनको अभीतक भूले नहीं हैं। रामदत्त बाबूसे कहा—"आप अपनी रसोइयाको कहें कि पाक बहुत अच्छा हुआ है. सब प्रकारकी तरकारियां और मछली-मांस बड़े ही स्वादिष्ट हुए हैं।"

रामदत्त बाबू बेचारे बूढ़े आदमी भीतरकी बात कुछ नहीं समझ सके, बोले, "हां; यह रसोई तो बहुत अच्छी बनाती है।"

मैंने मनमें कहा—"तुम्हारा सिर बनाती हूं।"

निमन्त्रित बाबूने कहा—"लेकिन यह बड़ा ही आश्चर्य मालूम होता है कि आपके घरमें दो एक तरकारियां ठीक हम लोगोंके देशकी तरह कैसे बनायी गयी हैं?"

इनकी इस बातसे मेरे मनमें और भी पक्का विश्वास हो गया कि ये मेरे कोई परिचित व्यक्ति हैं। यथार्थमें मैंने दो एक तरकारियां अपने देशकी प्रथाके अनुसार बनायी थी।

रामदत्त बाबूने कहा—"हो सकता है, उसका घर इस देशमें नहीं है।"

इस बार इन्हें मौका मिल गया। वे मेरे मुंहकी ओर एकाएक नजर डालकर पूछ बैठे—"तुम्हारा घर कहां है?"

मेरे मनमें पहले यह समस्या उठी, इनसे बोलूं या नही फिर निश्चय किया, "बोलूंगी।"

दूसरी समस्या यह कि, सच बोलूं या झूठ? झूठ बोलना ही स्थिर किया। ऐसा क्यों स्थिर किया, यह वही जानें जिन्होंने स्त्रियोंके हृदयको चातुर्य और कपट-की कोठरी तथा मनको कुटिल बनाया है। मैंने यह भी सोचा कि, आवश्यकता होनेपर सत्य बात बोलना मेरे हाथमें ही है। अभी कुछ और ही परिचय देकर देखती हूं। कुछ देरतक इन बातोंको सोचकर मैंने उत्तर दिया, "हमारा घर कालापोखरके पास एक गांवमें है।"

वे चौंक उठे। कुछ क्षणके बाद उन्होंने धीमे स्वरमें पूछा—"कौन कालापोखर, जहां अक्सर डकैती हुआ करती है?"

मैं—"हाँ।"

यह सुनकर वे चुप हो रहे, और कुछ न बोले। मैं मांसका बरतन हाथमें लिये खड़ी रही, अचेतकी भांति खड़ी रहना उचित नहीं, इस बातको मैं भूल गयी थी। अभी,

कुछ देर पहले जो मैंने अपनेको बारंबार धिक्कारा था, वह भूल गयी। देखा कि, अब वे उस प्रसन्नतासे भोजन नहीं करते जिस प्रसन्नतासे पहले भोजन कर रहे थे। यह देखकर रामदत्त बाबूने कहा—"उपेन्द्र बाबू, खाते क्यों नहीं?" यही सुनना मुझे बाकी था। उपेन्द्र बाबू! यह नाम सुननेसे पहले ही मैंने इन्हें पहचान लिया था, ये मेरे स्वामी हैं।

मैं रसोई-घरमें जा बरतनको धरतीपर पटककर एक बार बहुत दिनोंके अनन्तर आनन्द मनाने बैठी। रामदत्त-बाबू बरतन पटकनेकी आवाज सुनकर बोले—'क्या गिरा?' मैंने जो मांसके बरतनको जोरसे नीचे पटक दिया था, उसे उन्होंने सुन लिया।

बारहवां परिच्छेद

—:०:—

अबसे इस उपन्यासमें मुझे स्वामीका नाम लेना आवश्यक होगा। अब तुम पांच रसिक स्त्रियां एकत्र बैठकर परस्पर परामर्श करके कह दो कि किस शब्दका व्यवहारकर उनके नामका उल्लेख करूं? सैकड़ों बार "स्वामी" "स्वामी" कहकर तुम्हारे कानको जलाऊं या

'जमाई बारिक'के दृष्टान्तानुसार, स्वामीको 'उपेन्द्र' कहना आरम्भ कर दूँ, या प्राणनाथ, प्राणपति, प्राणवल्लभ कहनेकी झड़ी लगाऊं ? जो हमलोगोंके सबकी अपेक्षा प्रिय सम्बोधनके पात्र हैं, जिनको क्षण-क्षणमें पुकारनेकी इच्छा होती है, उन्हें क्या कहकर पुकारूं, ऐसा सम्बोधन मेरे अभागे देशकी भाषामें नहीं है। मेरी एक सखी (नौकरका अनुकरण करके) स्वामीको "बाबू" कहकर पुकारती थी, लेकिन सिर्फ बाबू कहना उसे प्रिय नहीं मालूम हुआ; इसलिये पीछे उसने स्वामीको "बाबूराम" कहकर पुकारना आरम्भ किया। मेरा भी जी चाहता है कि मैं भी वैसा ही करूं।

मांसके बरतनको दूर फेंककर मैंने मनमें निश्चय किया, यदि विधाताने खोये धनको मिलाया है तो इसे हाथसे न जाने दूँगी ! मुग्धाकी तरह लजाकर बनी बनायी बातको न बिगाड़ूंगी।

यह सोचकर मैं ऐसी जगहमें जाकर खड़ी हुई कि भोजनके स्थानसे बाहर जाते समय जो इधर-उधर देखता जाय, वह मुझको देख सके। मैंने मनमें कहा, अगर वे इधर-उधर ताकते न जायँगे तो मैं समझूंगी कि २० वर्षकी उम्र हो गयी, परन्तु उनको अबतक पुरुषका चरित्र कुछ नहीं मालूम। मैं दिलकी बात खोलकर कहती हूं, आप लोग

क्षमा करेंगे। मैं सिरके कपड़ेको पीछेकी ओर सरकाकर खड़ी थी। इस समय कहनेमें लजाती हूं। किंतु उस समय मेरी क्या आकांक्षा थी, वह आप स्वयं सोच देखें।

रमण बाबू आगे गये। वे चारों ओर ताकते २ गये, मानों उनकी आंख खबर ले रही थी कि कौन कहां है। उनके पीछे राम दत्त बाबू गये। उन्होंने किसी ओर नहीं देखा। तदनन्तर मेरे स्वामी गये—उनकी दृष्टि मानों चारों ओर किसीको खोज रही थी। मैं उनकी नज़रके सामने पड़ी। उनके नेत्र मुझीको खोज रहे थे, यह मैं बखूबी जानती थी। ज्यों ही उनकी नजर मुझपर पड़ी, मैं बड़े हाव-भावके साथ उनपर—क्या कहूं कहते लज्जा आती है—सांपका फण-विस्तार करना जैसा स्वभावसिद्ध है, वैसा ही हमलोगोंका कटाक्षपात। जिनको मैं अपना स्वामी जान चुकी थी, उनके ऊपर कुछ विशेष मात्रासे विष क्यों न ढालूं? मैंने दृष्टि-कटारका उनपर भरपूर वार किया। देखा, वे घायल होकर बाहर गये।

तब मैंने हीराकी शरण लेनेकी बात मनमें ठानी। उसे एकान्त स्थानमें बुलाया, वह हंसते-हंसते मेरे पास आयी। वह खूब जोरसे हंसकर बोली—"रसोई परोसते समय महाराजिनजीका तमाशा देखा था?" उत्तरकी उपेक्षा न करके उसने फिर हंसीका फव्वारा खोल दिया।

मैंने कहा—"यह जानती हूं, किन्तु उसके लिये तुम्हें नहीं बुलाया है। जन्मभरके लिये मेरा एक उपकार कर दो। ये बाबू कब जायँगे इसकी खबर मुझे जल्दी ला दो।"

हीराने इस बार कुछ सेकण्डके लिये हंसना बन्द कर दिया। वह गम्भीर भावसे बोली—"छिः बहुईजी, तुम्हें यह रोग है, यह मैं नहीं जानती थी।"

मैंने हंसकर कहा—"मनुष्यके सब दिन बराबर नहीं जाते। इस समय तू अपना गुरुभाई रहने दे, कह, मेरा यह उपकार करेगी या नहीं।"

हीरा—"मुझसे किसी तरह यह काम न होगा।"

मैं खाली हाथसे हीराके पास नहीं आयी थी। तलब-का रुपया मेरे हाथमें था। पांच रुपये उसके हाथमें रख दिये। कहा,—"मेरे सिरकी सौगन्ध है, यह काम तुझे करना ही होगा।"

हीराने उन रुपयोंको दूर फेंकना चाहा, किन्तु ऐसा न कर पास ही चूल्हा बनानेकी मिट्टीके ढेरपर रख दिया। बड़े गम्भीर भावसे बोली—"मैं तुम्हारे रुपये दूर फेंक रही थी, लेकिन झनक उठनेके भयसे मैंने धीरेसे यहां रख दिये हैं—उठा लेना। और यह सब बात फिर जबानमें न लाना।"

मैं रो उठी। हीरा ही एक विश्वासपात्री है और सभी अविश्वासी हैं, इस कामके लिये अब किसे पकड़ूं? मेरे

रोनेका असल तात्पर्य वह नहीं जानती थी। तोभी उसे दया उपज आयी। उसने कहा—"क्यों रोती हो ? क्या वे तुम्हारी जान-पहचानके आदमी हैं ?"

मैंने एक बार मनमें सोचा, हीराको सब बात खोल-कर कह दूं। फिर सोचा कि एक तो वह इसपर विश्वास न करेगी, करेगी भी तो कोलाहल मचा देगी। सब बातें सोचकर स्थिर किया, सुभाषिणीके सिवा और किसीकी गति नहीं, वही मेरी बुद्धि—वही मेरी प्राणरक्षिणी है। जाती हूं उससे सब बात खोलकर कहने और सलाह लेने। हीरासे कहा,—"जान-पहचानकी क्या पूछती हो, बड़े ही जान-पहचानके हैं। सब बातें सुननेपर तुम विश्वास न करोगी, इसीसे सब बातें खोलकर तुमसे नहीं कहीं। इसमें कोई दोष नहीं है।"

"कुछ दोष नहीं है" कहकर मैंने सोचा–मैं दोष भले ही न समझूं, पर हीरा तो समझेगी। तो उसे मैं व्यर्थ क्यों पहलेसे घसीटूं ? कुतर्कने फिर मनको भटकाया, जिसपर कोई आफत आ पड़ती है, वह उद्धारके लिये कुतर्क अव-लम्बन करता है। मैंने हीराको फिर समझाकर कहा—"इसमें दोष कुछ नहीं है।"

हीरा—"क्या तुम उनसे मिलोगी ?"

मैं—"हाँ।"

हीरा—"कब ?"

मैं—"रातको सब लोगोंके सो जानेपर।"

हीरा—"अकेली ?"

मैं—"हाँ, अकेली।"

हीरा—"यह काम मेरे बापसे भी न होगा ? अरे दादा ! पराये मर्दके साथ इस तरह छिपकर मिलनेमें तुम्हें कुछ भी शर्म नहीं आती ?"

मैं—"अगर बहूजीसे हुक्म दिला दूँ ?"

हीरा—"तुम पागल हुई हो क्या ? वे कुलवधू—सती-सुहागिन हैं, वे क्या ऐसे कामोंमें हाथ देंगी ?"

मैं—"अगर वे तुमको रोकें नहीं, तो तुम जाओगी ?"

हीरा—"तब जाऊँगी, लेकिन तुम्हारे रुपये न लूंगी। अपने रुपये तुम ले लो।"

मैं—"अच्छा, समयपर तुम मुझसे एक बार फिर मिल जाना।"

मैं आँख पोंछकर सुभाषिणीकी खोजमें गयी। उसे अकेली पाकर मैं खुश हुई। मुझे प्रसन्न देखकर सुभाषिणी-का वह सुन्दर मुख आनन्दसे मानों प्रातःकालके कमलकी भाँति खिल उठा—उसका सर्वाङ्ग सबेरेके हरसिंगार पुष्पकी भाँति अथवा चन्द्रोदयके समय नदी-स्रोतकी तरह

हर्षसे प्रफुल्लित हो गया। उसने हंसकर मेरे कानके पास मुंह लाकर पूछा—"पहचान तो लिया ?"

मैं स्तब्ध हो गयी। अचम्भेके साथ पूछा, "सो क्या ? तुमने कैसे जाना ?"

सुभाषिणी मुंह फेरकर बोली—"अहा ! जान पड़ता है तुम्हारे सोनेका चाँद जैसे आप ही आकर पकड़ाई दिया हो ? हमलोग आकाशमें फन्दा बिछाना जानती है, इसीसे भाई, तुम्हारे आकाशके चाँदको पकड़कर ला दिया है।"

मैंने कहा—"तुमलोग कौन ? तुम और र- बाबू ?"

सुभा०—"नहीं तो और कौन ? तुम तुम्हारे स्वामी ? याद है न ? तुमने अपने श्वसुर और उनके गाँवका नाम बता दिया था। यह सुनते ही बाबू उन्हें जान गये। तुम्हारे उपेन्द्र बाबूका एक बड़ा मुकदमा इनके हाथमें था, उसीका ध्यान करके तुम्हारे उपेन्द्र बाबूको कलकत्ते आनेको लिखा। इसके बाद निमन्त्रण।"

मैं—"उसके बाद कटोरेको हाथसे ढककर बूढ़ीके दाल परोसनेपर कृत्रिम क्रोध करना—"

सुभा०—"हाँ, वह भी हमी लोगोंका प्रपञ्च था।"

मैं—"तो क्या उन्हें मेरा परिचय भी कुछ दिया गया है ?"

सुभा०—"अरी ! यह कैसे दिया जाय ? तुमको उ कू

पकड़कर ले गये थे, उसके बाद कहां गयी, क्या किया, यह सब कौन जाने? तुम्हारा परिचय पानेपर क्या वे तुम्हें अपने घरमें रक्खेंगे? वे कहेंगे, मेरे ऊपर एक जंजाल दिया जा रहा है। र० बाबू कहते हैं—"अब तुम स्वयं जो चाहो कर सकती हो।"

मैं—"एक बार कपार ठोककर देखूंगी—न होगा डूब मरूंगी; किन्तु मेरे साथ उनकी भेंट न हो तो क्या कर सकूंगी?"

सुभा०—भेंट करनी चाहिये। कब भेंट करोगी, किस जगह?"

मैं—"तुम लोगोंने जब इतना उपकार किया है, तब इस विषयमें भी कुछ सहायता करो। उनके डेरेपर जाकर भेंट करना ठीक न होगा। कौन वहां मुझे ले जायगा? कौन उनसे भेंट करावेगा? यहीं उनसे भेंट करना अच्छा है।

सुभा०—"किस वक्त?"

मैं—"रातमें सबके सो जानेपर।"

सुभा०—"तुम स्वयं अभिसारिका बनोगी?"

मैं—"इसके सिवा और उपाय क्या? इसमें दोष ही क्या है? स्वामी हैं न?"

सुभा०—"नहीं, कुछ दोष नहीं। स्वामीके पास न जानेमें ही दोष है। अच्छा, तो इसके लिये उन्हें रातभर

अटकाना पड़ेगा। पास ही उनका डेरा है। उनको बिल-मानेके लिये किस युक्तिका अवलम्बन करना होगा यह बाबूसे एक बार सलाह करके देखती हूं।

सुभाषिणीने रमण बाबूको बुला भेजा। उनके साथ जो बात-चीत हुई, वह उसने मुझसे आकर कही। र- बाबूने उनको रोक रखनेकी जो तद्‌बीर निकाली है, वह यही कि—वे इस वक्त मुकद्दमेका कागज पत्र नहीं दिखेंगे, कोई बाधा दिखाकर टाल देंगे। शाम होनेके बाद कागज देखनेका समय निर्धारित करेंगे। सन्ध्याके अनन्तर तुम्हारे स्वामीके आनेपर कागज-पत्र देखेंगे। कागज-पत्र देखते-देखते कुछ रात बिता देंगे, रात हो जानेपर भोजनके लिये अनुरोध करेंगे। उसके बाद तुम जो चाहो करो। रातमें रहनेके लिये हमलोग क्या कहकर अनुरोध करेंगे?

मैंने कहा—"वह अनुरोध तुम लोगोंको करना न होगा, वह मैं ही करूंगी। मेरा अनुरोध जिसमें सुनेंगे, उसकी तद्‌बीर मैंने कर रक्खी है। दो एक बार मैंने उनको तिरछी नजरसे देखा था, उसका असर उनके दिलपर कुछ न कुछ जरूर हुआ है, जिसे वह अपनी तृषित दृष्टिद्वारा सूचित कर चुके हैं। आदमी अच्छे नहीं हैं। इस समय अपना अनु-रोध मैं उनके पास किसी तरह जाहिर करूंगी। एक पत्र लिख दूंगी। वह कोई उनको दे आवे तो काम बन जाय।"

सुभा—"किसी नौकरके हाथ भेज देना।"

मैं—"जन्म-जन्मान्तरमें स्वामीसे मुलाकात न हो, यह कबूल है ; लेकिन मर्दके हाथ चिट्ठी भेजनेका साहस मैं नहीं कर सकूंगी।"

सुभा०—"ऐसा ! तो किसी दासीके हाथ भेज देना।"

मैं—"दासियोंमें कौन ऐसी है, जिसका विश्वास करूं ? अगर वह चिट्ठी किसी दूसरेके हाथमें पड़ी तो बड़ा अनर्थ होगा। तब हाथका हीरा गँवाना पड़ेगा।"

सुभा०—"हीरा तो विश्वासी है।"

मैं—"मैंने हीरासे कहा था। विश्वासी कहनेसे वह नाराज हो गयी। तुम्हारा इशारा पानेसे वह जा सकती है। किन्तु तुमको ऐसा करनेके लिये कैसे कहूं ? रहने दो, मैं अकेली ही मरूंगी। इन अभागे नेत्रोंमें फिर जलभर आये।"

सुभा०—"हीराने मेरे बारेमें कुछ कहा है क्या ?"

मैं—"यही कि अगर तुम मना न करोगी तो वह जा सकती है।"

सुभाषिणी बड़ी देरतक सोचती रही, पीछे बोली—"अच्छा, सांझ होनेके बाद उसे इस कामके लिये मेरे पास भेज देना।"

तेरहवां परिच्छेद



सांझ होनेके बाद मेरे स्वामी कागजपत्र लेकर रमण बाबूके पास आये। खबर पाकर मैंने फिर एक बार हीराके हाथ पांव-पकड़े। हीरा वही एक बात बोलती रही "बहू जी अगर जानेसे न रोकें तो जा सकती हूं। तब मैं समझूंगी कि इसमें दोष नहीं है।"

मैंने कहा,—"जो उचित समझो, करो—मेरे हृदयमें बड़ा उत्ताप हो रहा है।"

यह इशारा पाकर हीरा मुस्कुराती हुई सुभाषिणीके पास गयी। मैं उसके लौटनेकी प्रतीक्षा करने लगी। देखा कि वह हँसीका फौव्वारा छोड़ती, बिखरे हुए बालों-को समेटती हांफते हांफते दौड़ी आ रही है। मैंने पूछा—"इतनी हँसी क्यों ?"

हीरा—"अरे दादा! ऐसी जगहमें भी कोई किसीको भेजता है? जान जा चुकी थी और क्या!"

मैं—"क्यों?"

हीरा—"मैं जानती थी, बहूजीके घरमें झाड़ू नहीं रहता। समयपर हमसब जाकर घरको झाड़-बुहार आती

हैं। आज देखा कि बहूजीके हाथके पास ही कोई झाड़ू-बख आया है। मैं ज्योंही वहां गई त्योंही "दूर हो यहांसे" कहकर वे झाड़ू लेकर मारने दौड़ीं। मैं दौड़ना जानती हूं, इसीसे भगकर अपनी जान बचायी। नहीं तो आज मेरी बुरी गति होती। तोभी एक झाड़ू शायद पीठपर पड़ ही गयी। देखो तो दाग लगा है या नहीं?"

हीराने हँसते हँसते मुझे पीठ दिखायी। बात बिलकुल झूठ थी, दाग नहीं था। तब वह बोली—"कहो अब क्या करना होगा, कर आऊँ।"

मैं—"झाड़ू खाकर आओगी?"

हीरा—"सिर्फ झाड़ू मारा है—मना तो नहीं किया। मैंने कहा था न, वह मना न करेंगी तो मैं जाऊँगी?"

मैं—"झाड़ू मारना क्या मना करना नहीं हुआ?"

हीरा—"अच्छा, सुनो कहती हूं। बहूजीने जब झाड़ू मारनेको उठाया, तब उनके होठोंपर कुछ हंसीका चिह्न दिखायी दिया। मैं उनके मनका भाव समझ गयी। कहो, क्या करना होगा?"

तब मैंने कागजके एक टुकड़ेपर लिखा—"मैं आपको अपना मन अर्पण कर चुकी हूं। क्या आप ग्रहण करेंगे? यदि करें तो आज रातको यहीं बाहरके कमरेमें सोयेंगे, जिसमें घरका द्वार खुला रहे। आपकी यही पाकपरिवे-

षिणी। पुर्जा लिखकर शर्मके मारे जी चाहने लगा कि पोखरमें डूब मरूं या अन्धेरेमें जाकर मुंह छिपाऊं। क्या करूं विधाताने भाग्य ही ऐसा कर दिया है! दोष किसे दूँ! शायद कभी किसी कुलकामिनीको ऐसी दुर्दशाका सामना नहीं करना पड़ा होगा।

कागजको मोड़-माड़कर हीराको दिया—"कहा जरा ठहर जा! सुभाषिणीसे जाकर कहा, एक वार लाल बाबूको बुलाओ। जो हुआ है, उन्हें जता देना होगा। सुभाषिणीने उन्हें बुलाकर जो कहना चाहिये था, कह दिया। उनके चले जानेपर मैंने हीरासे कहा—"अब जाओ।" वह गयी। कुछ देर बाद उसने कागज वापस दिया। उसके एक कोनेमें लिखा था "अच्छा।" तब मैंने हीरासे कहा—"यदि इतना किया तो एक काम और करना होगा। आधी रातको मुझे उनके सोनेका कमरा दिखला आना होगा।"

हीरा—"अच्छा, इसमें मुझे कुछ पाप तो न होगा?"

मैं—"कुछ नहीं। वे पूर्वजन्ममें मेरे स्वामी थे।"

हीरा—"पूर्वजन्ममें या इस जन्ममें, बात कुछ ठीक समझमें नहीं आती।"

मैंने हँसकर कहा—"चुप।"

हीराने हँसकर कहा—"अगर इस जन्मके होंगे, तो मैं

पांच सौ रुपये बखशीश लूंगी। नहीं तो मेरे झाड़ूका दाग जन्मभर रहेगा।"

मैंने सुभाषिणीसे जाकर सब बातें कहीं। सुभाषिणी साससे कह आयी, "आज कुमुदकी तबीयत ठीक नहीं है, वह रसोई नहीं बना सकेगी। महराजिनजी बनावें।"

सुलोचना रसोई करने गयी। सुभाषिणीने मुझे घरमें ले जाकर किवाड़ बन्द कर दिये। मैंने कहा—"यह क्या! कैद क्यों की? सुभाषिणीने कहा—"तुम्हें सजाऊंगी।"

उसने मेरा मुंह अच्छी तरह धो-पोंछ दिया। बालोंमें सुगन्धित तेल लगाकर बड़े यत्नसे जूड़ा बांध दिया। कहा, "इस जूड़ाका दाम हजार रुपया मुझे भेज देना।" इसके बाद वह अपनी एक चटकीली साड़ी पेटीसे निकालकर मुझे जबर्दस्ती पहनाने लगी। उसने बहुत खींचा-तानी की, नङ्गी हो जानेके भयसे मैं पहननेको मजबूर हुई। तब वह अपने गहने लाकर पहनाने बैठी। मैंने कहा—"मैं ये किसी हालतमें नहीं पहनूंगी।"

इसके लिये बड़ी बहसें हुईं—मुझे किसी तरह पहननेको राजी न होते देखकर वह बोली—"अच्छा। मेरे बदनके ये गहने न पहनोगी तो न सही! मैंने एक सूट और मंगा रक्खा है, वही पहनो।" यह कहकर सुभाषिणीने फूलदान निकालकर हाथोंमें बेलाके अधखिले

फूलोंका बाला पहना दिया। उसीका कण्ठा, उसीके बाजू और गलेमें उसीकी दोलड़ी माला। इसके अनन्तर एक जोड़ा सोनेका इयरिंग (झूमक) निकालकर बोली, यह मैंने अपने रुपयेसे तुमको देनेके लिये र-बाबूके द्वारा खरीदवा मंगाया है। तुम जब जहां रहोगी, ये पहने रहनेपर मुझे याद करोगी। कौन जाने! आजके बाद फिर तुम्हारा दर्शन न हो—भगवान यही करें। इसलिये आज मैं यह झूमक अपने हाथसे तुम्हारे कानोंमें पहनाऊंगी, इसमें "नहीं" न बोलो।"

कहते-कहते वह रो उठी। मेरी आंखोंमें भी आंसू भर आये। मैं इस बार इनकार नहीं कर सकी। सुभाषिणीने इयरिंग्स पहना दिये।

सब सिंगार-समाप्त हो चुकनेपर दासी सुभाषिणीके लड़केको दे गयी। मैं लड़केको गोदमें लेकर किस्सा कहने लगी। वह किस्सा सुनते-सुनते सो गया। इसके बाद मेरे मनमें जो एक दुःखकी बात याद हो आयी थी, वह भी मैं सुभाषिणीसे कहे बिना नहीं रह सकी, कहा, "मैं प्रसन्न बेशक हुई हूं लेकिन मैं मन ही मन उनको धिक्कारती हूं। मैंने तो पहचान लिया है कि ये मेरे स्वामी हैं, इसलिये मैंने जो कुछ किया है, उसमें मेरे जानते कोई दोष नहीं है। लेकिन उन्होंने मुझे पहचाना हो, यह

कदापि सम्भव नहीं। मैंने उनको नवयुवक अवस्थामें देखा था, इसलिये उन्हें देखकर मुझे पहले ही सन्देह हुआ था। उन्होंने सिर्फ मुझे ग्यारह वर्षकी बालिकाके रूपमें देखा था। इतने दिन बाद वे मुझे पहचान गये हों, ऐसा कोई लक्षण दिखायी नहीं देता। इससे तो यही सिद्ध होता है कि वे मुझको परस्त्री जानकर ही मेरे प्रणयकी आशामें मुग्ध हुए हैं। यह समझकर मैं मनही मन उनकी बड़ी निन्दा कर रही हूं। किन्तु वे स्वामी हैं—मैं उनकी स्त्री हूं, उनके लिये निन्दित शब्दका प्रयोग करना अनुचित समझकर मैं इस विषयकी आलोचना न करूंगी। मैंने मनमें संकल्प किया कि यदि कभी समय पाऊंगी, तो यह आदत छुड़ाऊंगी।"

सुभाषिणी मेरी बात सुनकर बोली—"तुमतो बिल्कुल बन्दर:मालूम होती हो—उनके स्त्री नहीं हैं—किसके साथ प्रणय करें ?"

मैं—"तो क्या मेरे स्वामी हैं ?"

"आः ! मरती क्यों नहीं ! क्या स्त्री और पुरुष दोनों बराबर होते हैं ? तू कमसरियटमें काम करके रुपया ले आ तो देखूं ?"

मैं—"वे पेटमें बच्चा धारणकर प्रसव करें तो मैं भी कमसरियटमें काम करने जाऊं। जो जिस कामको कर

सकता है, वह उसे करता है। पुरुषको इन्द्रिय-रोकना क्या इतना कठिन है?

सुभा०—"अच्छा, पहले तू घर बसा, पीछे घरमें आग लगाना। इन सब बातोंको जाने दे। किस तरह स्वामीका मन अपने हाथमें लेगी, उसका इम्तहान दे, पास न होनेपर तेरी गति नहीं।"

मैं कुछ चिन्तित होकर बोली—"यह विद्या तो कभी सीखी नहीं!"

सुभा०—"नहीं सीखी तो मुझसे सीख। मैं इस विद्यामें निपुण हूं, जानती है न!"

मैं—"सो तो देख रही हूं।"

सुभा०—"तो सीख, तुझे सिखाती हूं। मान ले कि तू स्त्री नहीं पुरुष है। मैं किस तरह तेरे मनको लुभाती हूं, वह देख।"

यह कहकर उस खेलाड़िनने सिरपर ज़रा घूंघट डाल बड़े प्रेमसे अपने हाथका लगाया हुआ सुवासित पान लाकर मुझे खानेको दिया। वह पान केवल रमण बाबूके लिये वह रखती थी और किसीको नहीं देती थी, यहांतक कि वह आप भी नहीं खाती थी। रमण बाबूकी गुड़गुड़ी वहां रखी थी, उसपर चिलम धरी थी। उसमें तम्बाकूकी राख मात्र थी। उसे फूंकती हुई उसने मेरे सामने लाकर रख दिया। इसके बाद फूलोंसे सजा हुआ पंखा हाथमें

लेकर झलने लगी। हाथकी चूड़ियां बड़ी मीठी आवाजोंमें झनकने लगीं।

मैंने कहा—"भई! यह तो खिदमतगारी है—दासी कर्ममें मेरा पाण्डित्य कहांतक है क्या इसीका परिचय देनेके लिये आज मैंने उनको पकड़ रक्खा है?"

सुभा०—"हम लोग दासी नहीं तो और क्या हैं?"

मैंने कहा—"जब उनका प्रेम मैं अपने ऊपर देखूंगी तब खिदमतगारी होगी। तब मैं पंखा झलूँगी, पैर दाबूंगी, पान लगाकर खिलाऊंगी। पहले ये सब नहीं।"

तब सुभाषिणी हंसते-हंसते मेरे पास आकर बैठी। मेरा हाथ अपने हाथमें लेकर बड़े नाज नखरेके साथ मीठी मीठी बात करने लगी। मन्द-मन्द हंसती टेढ़ी चितवनसे मेरी ओर देखती धीरे-धीरे पान चबाती हुई कानकी बालियां हिलाकर जो स्वाँग सजा था, उसीके अनुरूप प्रेमालाप करने लगी। बात करते-करते वह उस भावको भूल गयी। सखी-भावमें बात करने लगी। मैं अब चली जाऊंगी; इसकी चर्चा चलाकर खेद प्रकट करने लगी। उसकी आंखके कोनेमें एक बूंद आंसू दिखायी दिया। तब मैं उसे प्रसन्न करनेके लिये बोली, "जो तुमने सिखलाया है, वह स्त्रियोंके अस्त्र जरूर हैं, लेकिन इस समय ये अस्त्र क्या उ-बाबूके ऊपर कुछ काम करेंगे?"

सुभाषिणीने हंसकर कहा—"तो मेरा ब्रह्मास्त्र क्यों नहीं सीखती ?"

यह कहकर उसने मेरे गलेमें बांह डालकर मेरा मुंह चूमा। एक बूँद आंसू उसकी आँखसे मेरे गालपर गिरा।"

मैं अपनी आंखोंके आंसूको रोककर बोली—"यह क्या भई ! दान हुआ नहीं पहले दक्षिणा देना ही सिखलाती हो।

सुभाषिणी—"इतनी मोटी समझ है तो तेरे विद्या न होगी। तू क्या जानती है, उसकी परीक्षा दे ! देखूं तेरी कहाँतक पहुंच है ? अच्छा, मान ले मैं "उपेन्द्र बाबू हूं।"

यह कहकर वह कुरसीपर डटकर बैठी—हंसी रोक न रख सकनेपर मुंहमें कपड़ा डालने लगी। हँसी रुकनेपर एक बार मेरे मुंहको टक टकी लगाकर देखा—फिर तुरन्त आप ही हंसते-हंसते लोट पोट हो गयी। हंसीका वेग कम होनेपर बोली, "परीक्षा दे।" तब उस विद्याका परिचय सुभाषिणीको दिया, जिसका परिचय पाठकोंको पीछे मिलेगा। सुभाषिणीने मुझे कुरसीसे ठेलकर कहा—"दूर हो पापिष्ठ, काली नागिन, तूने तो गजब किया !"

मैं—"क्यों मैंने क्या किया है ?"

सुभा०—“इस मीठी हंसी और टेढ़ी चितवनसे क्या पुरुष जी सकता है? मरकर भूत होता है।”

मैं—“तो परीक्षामें पास हुई?”

सुभा०—“पास क्या ऐसा वैसा—खूब पास—कम-सरियटके एक सौ उनहत्तर पुरुषोंने भी ऐसी हंसी और चितवन न देखी होगी। जमानका सिर अगर चकरा जाय तो थोड़ा बादामका तेल रगड़ देना।”

मैं—“अच्छा। अब नौकर-चाकरोंकी बोलचालसे मालूम होता है कि बाबू लोगोंका खाना-पीना हो गया। रमण बाबूका अपने शयनागारमें आनेका समय हो गया। अब मैं जाती हूं। जो तुमने सिखलाये थे, उनमें एक मुझे बहुत मीठा लगा—वही मुख-चुम्बन। आओ एक बार और उसकी परीक्षा ले लो। तब सुभाषिणी मेरे गलेसे लिपट गयी, मैं भी उसके बदनमें चिपट गयी। गाढ़ आलिङ्गनपूर्वक परस्पर मुख-चुम्बन कर गलाजोड़ी करके हम दोनों बड़ी देरतक रोती रहीं। ऐसा प्रेम और क्या होगा? सुभाषिणीकी तरह प्रेम करना और कौन जानेगी? मैं जीते जी सुभाषिणीका प्रेम नहीं भूल सकती।”

चौदहवां परिच्छेद



मैं हीराको सतर्क करके अपने शयन-गृहमें गयी। बाबू लोगोंका खाना-पीना हो चुका है। इस समय बाहरमें भारी कोलाहल होते सुन पड़ा। कोई पुकारकर पंखा, कोई पानी, कोई औषध लानेको कह रहा है; कोई चिल्ला-कर डाकृर बुलानेकी रट लगा रहा है, इस प्रकार बड़ी हलचल मच गयी है। हीरा हँसते-हँसते आयी। मैंने पूछा, "यह कैसा हल्ला है?"

हीरा—"वही जो नये बाबू आये हैं, उनको गश आ गया था।"

मैं—"फिर क्या हुआ?"

हीरा—"अब होशमें आये हैं।"

मैं—"तबीयत कैसी है?"

हीरा—"ठीक नहीं है। बड़ी बेचैनी है। अपने डेरे-पर नहीं जा सके। यहीं बड़े कमरेके पासवाले घरमे सोये हैं।"

मैं समझ गयी, यह बहाना है। मैनेकहा,—"बत्तियां बुझ जाने और सबके सो जानेपर मैं जाऊंगी।"

हीराने कहा—"तबीयत जो खराब है ?"

मैं—"खराब नहीं, तेरा सिर ! और पचीस बोबियोंके सिर !! अगर अवसर मिला तो—"

हीरा हंसते हंसते चली गयी। पीछे रोशनी बुत जाने और सब लोगोंके सो जानेपर हीरा मुझे साथ ले जाकर उनकी कोठरी दिखा आयी, मैं दबे पांव घरके भीतर गयी, देखा, वे अकेले सोये हैं, अस्वस्थ कुछ भी नहीं हैं। घरमें दो बड़े-बड़े लैम्प जल रहे हैं। उन्होंने अपनी रूपराशिसे घरको और भी उजाला कर रखा है। उन्हें देख खुशीसे मेरा शरीर रोमाञ्चित हो उठा।

युवावस्था प्राप्त होनेके बाद मेरा यही पहले-पहल स्वामि-सम्भाषण है। उस समयके अपूर्व सुखका वर्णन कैसे करूं ? मैं बड़ी बोलनेवाली थी, लेकिन तब प्रथम प्रथम उनसे बात करने गयी, तब चेष्टा करनेपर भी मुंहसे कोई शब्द न निकला। गला भर आया। सारे अङ्ग कांपने लगे, छाती धड़कने लगी, मुंहपर एक प्रकारके भयका चिह्न दिखाई देने लगा, कण्ठ सूख गया। मुंहसे कोई बात न निकलनेके कारण मेरी आंखोंसे आंसू बह चले। उस अश्रुजलका मर्म वे नहीं समझ सके। बोले; "रोती क्यों हो ? मैंने तो तुम्हें बुलाया नहीं—तुम स्वयं आयी हो—तब फिर रोना फजूल है "

इस कठोर वाक्यसे मुझे मर्मान्तिक पीड़ा हुई। उन्होंने मुझे व्यभिचारिणी समझ लिया इससे अश्रुकी धारा और भी वेगसे बहने लगी ; मनमें कहा, तो अपना परिचय दिये देती हूं—यह दारुण दुःख अब सहा नहीं जाता। फिर तुरन्त ही मेरे मनमें यह सन्देह हुआ कि परिचय देनेसे यदि ये विश्वास न करें,—यदि ये समझ बैठें कि इसका घर कालापोखरके पास है, जरूर ही इसने मेरे स्त्री-हरणकी बात सुनी होगी, अब धन-संपत्तिके लोभसे मेरी स्त्री बनकर झूठा परिचय दे रही है, तब मैं कैसे इनको विश्वास उत्पन्न कराऊंगी, इसलिये परिचय न दिया। लम्बी सांस लेकर आंचलसे आंसू पोंछ उनके साथ बात करनेको संभल बैठी। उनके कतिपय प्रश्नोंका उत्तर "हां, ना" करके देने लगी। इसके बाद वे मेरा मुंह स्थिर दृष्टिसे देखकर बोले—"कालापोखरके समीपवर्ती गांवमें ऐसी सुन्दरी स्त्रीने जन्मग्रहण किया है, यह मैंने कभी स्वप्नमें भी नहीं सुना था। मैं उनकी दृष्टिपर लक्ष्य किये हुए थी। वे बड़े आश्चर्यके साथ मेरे मुंहकी ओर देख रहे थे। उनकी बातका उत्तर मैंने एक ढोंग रचकर दिया, कहा—"मैं सुन्दरी नहीं, बन्दरी हूं। हमारे देशमें तो आपकी स्त्रीकी ही सुन्दरताका यश फैला हुआ है। इस व्याजसे उनकी स्त्रीकी चर्चा चलाकर पूछा, "क्या उनका कहीं कुछ पता मिला है या नहीं?"

"नहीं, तुमको देशसे आये यहां कितने दिन हुए ?"

"मैं उस दुर्घटनाके कुछ ही दिन बाद यहां आयी। ज्ञान पड़ता है, आपने दूसरा ब्याह कर लिया है ?"

"नहीं।"

पूछनेको बड़ी-बड़ी बातें थीं, लेकिन मैंने देखा कि अभी उनको इन सब बातोंके उत्तर देनेका अवसर नहीं है। मैं बिना बुलाये अपनी इच्छासे उनके पास आयी थी —इसलिये मेरा आदर करना भी उनके लिये उतना जरूरी न था। वे चुप होकर अचम्भेके साथ मेरे मुंहकी ओर ताकते रहे। फिर एक बार बोले, "आश्चर्य ! मनुष्यका ऐसा रूप तो कभी देखा नहीं।"

सौत न होनेकी बात सुनकर बड़ी खुशी हुई। बोली— "आप जैसे सज्जन हैं, यह कार्य भी वैसी ही विवेचनाका हुआ है। नहीं तो ब्याह कर लेनेके बाद अगर आपकी स्त्री मिलती तो दोनों सौतोंमें खूब ही तखड़-फखड़ मचता।"

वे मुस्कुराकर बोले—"इसका भय नहीं। उस स्त्रीको पाकर अब मैं उसे ग्रहण करूंगा, ऐसा तो मालूम नहीं होता। इतने दिन क्या उसका धर्म बचा होगा ? वह तो जातिभ्रष्ट हो गयी होगी।"

मेरे सिरपर मानों एकाएक वज्रपात हुआ। मेरी सारी आशाओंपर पानी फिर गया मेरा परिचय पाने

पर मुझे अपनी स्त्री समझकर भी ग्रहण नहीं करेंगे! हाय! मेरा इस बारका नारी-जन्म वृथा हुआ।

मैंने साहस करके पूछा—"यदि वे अभी आपसे मिलने आवे तो क्या कीजियेगा।"

उन्होंने अम्लान मुखसे कहा—"उसे त्याग दूंगा।"

अरे! ऐसा निर्दय! मैं स्तब्ध हो रही। धरती मेरी आंखोंके सामने घूमने लगी।

उस रातको मैंने स्वामीकी शय्यापर बैठकर उनकी मोहिनी मूर्तिको देखते-देखते प्रतिज्ञा की,—"अगर ये मुझे पत्नी जानकर ग्रहण न करेंगे तो मैं प्राणत्याग करूंगी।"

पन्द्रहवां परिच्छेद



मेरे मनकी वह प्रबल चिन्ता दूर हुई। इससे पहले ही मैं समझ गयी थी कि वे मेरे वशमें आ गये हैं। मनमें कहा, यदि गैंड़ेको खड्ग प्रयोग करनेमें पाप नहीं, यदि हाथीको दन्तप्रहारमें पाप नहीं, यदि बाघको पंजा मारनेमें पाप नहीं, यदि भैंसको सींग चलानेमें पाप नहीं, तो मुझे भी पाप न होगा। ईश्वरने हमलोगोंको जो अस्त्र दिये हैं, दोनोंके हितार्थ उनका प्रयोग करूंगी।

जो काम करना है, वह अभी क्यों न कर डालूं। मैं उनके पाससे दूर जा बैठी और प्रसन्न होकर उनके सा' बात करने लगी। वे मेरे पास आकर मेरे बदनसे सट-कर खड़े हुए। मैंने उनसे कहा, आप इस तरह खड़े न हों देखती हूं आपके मनमें कुछ भ्रम उत्पन्न हुआ है। मैंने हँसते-हँसते यह बात कही और अपनी चोटीको खोलकर फिर धीरे-धीरे बांधने लगी। मैं व्यभिचारिणी नहीं हूं। आपके मुंहसे केवल देशका संवाद सुनने आयी हूं। बुरा मतलब कुछ भी नही है। आपके मनमें यदि खोटा खयाल हो तो उसे दूर कर दीजिये।

मालूम होता है, कि उन्होंने मेरी इस बातका विश्वास किया। मुझसे कुछ दूर हटकर बैठे। तब मैं हँसती-हँसती बोली,—"आपने कुछ समाचार न सुनाया तो मैं अब जाती हूं, आपके साथ यहींतक भेंट," कहकर मैं जिस विष भरी चितवनसे देखना चाहिये था, उस दृष्टिसे देखता देखती और अपनी चिकनी सुवासित कुटिल अलकावलीका अग्रभाग मानों अनजानकी तरह उनके गालमें झुलाकर सायंकालकी हवामें वासन्ती लताकी भांति जरा हिलकर खड़ी हुई।

जैसे मैं सचमुच ही जानेके लिये उठ खड़ी हुई होऊं, देखकर वे क्षुब्ध हुए, आकर मेरा हाथ पकड़ा। वे हाथ पकड़कर मानों आश्चर्यकी तरह देरतक मेरे हाथकी ओर

देखते रहे। मैंने कहा, "क्या देख रहे हैं।" उन्होंने कहा, क्या यह फूल है? "यह तो साधारण फूल नहीं है। फूलसे कहीं सुन्दर है। बेला फूलकी अपेक्षा मनुष्यका हाथ कोमल और कमनीय होता है, यह मैंने आज ही देखा।" मैंने झिझककर हाथ छुड़ाकर अलग कर दिया, किन्तु हँसकर कहा,—"तुम अच्छे आदमी नहीं मालूम होते, मुझे मत छूओ, मुझे कुलटा न समझना।"

यह कहकर मैं द्वारकी ओर अग्रसर हुई। स्वामीके साथ ऐसा दुर्व्यवहार! अब भी वह बात याद आनेपर दुःख होता है। उन्होंने हाथ जोड़कर पुकारा,–"मेरी बात मानो, मत जाओ, मैं तुम्हारा रूप देखकर पागल हुआ हूं। ऐसा रूप कभी देखा नहीं, जरा और देखकर नयनको तृप्त कर-लेने दो, फिर क्या कभी तुम्हें देखूंगा?" मैं फिर लौटी लेकिन बैठी नहीं—बोली, 'प्राणप्यारे! मैं तो खाकसे भी बदतर हूं; तुम्हारी दृष्टिमें चाहे मैं कैसी ही भली जचूं, पर हूं मैं बड़ी अभागिन। जो तुम्हारे सदृश पुरुष-रत्नको छोड़े जा रही हूं। मेरे मनमें कितना दुःख है। इतनेहीसे समझ जाना। लेकिन क्या करूं? धर्मही हमलोगोंका एक प्रधान धन है–एक दिनके सुखके लिये मैं अपने धर्मको न खोऊँगी। बिना सोचे-विचारे आपके पास आयी हूं, और मैंने बिना सोचे-समझे आपको पत्र लिखा था। लेकिन मैं एकबारगी

रसातल जाना नहीं चाहती। अब भी मेरी धर्मरक्षाका मार्ग खुला हुआ है, मेरा भाग्य है, जो वह बात इस समय मुझे याद हो आयी। भगवानने कुशल की, मैं जाती हूं।"

उन्होंने कहा—"अपना धर्म तुम आप जानो। तुमने मुझे ऐसी दशामें डाल दिया है कि मुझे धर्माधर्मका कुछ भी ज्ञान नहीं रहा। मैं शपथ करता हूं, तुम हमेशाके लिये मेरी हृदयेश्वरी होकर रहोगी। एक दिनके लिये न समझो।"

मैंने हँसकर कहा--"पुरुषके शपथ करनेका विश्वास नहीं होता। एक क्षणको भेंटमें क्या इतना होना संभव है ?" कहकर मैं फिर आगे बढ़ी। दरवाजेतक गयी। तब उन्होंने धैर्यधारणमें असमर्थ होकर दोनों हाथोंसे मेरे दोनों पैर पकड़ रास्ता रोका। कहा,—"मैं तुमको जाने न दूँगा, मैं तुम्हारे साथ किसी तरहका दुर्व्यवहार न करके केवल तुम्हारा रूप देखा करूंगा। उनका मर्मभेदी निःश्वास मेरे पैरोंपर पड़ा। मैं कांप उठी, उनकी दशा देखकर मुझे बड़ा दुःख हुआ। मैंने कहा,—"तो अपने डेरेमें चलो--यहां रहनेपर तुम मुझे छोड़कर चल दोगे।"

वे तुरन्त राजी हो गये। उनका डेरा सिमला महल्लेमें वहांसे नजदीक ही था, उनकी गाड़ी भी मौजूद थी, दरबान लोग नींदमें अचेत पड़े थे। हम दोनों धीरेसे

किवाड़ खोलकर गाड़ीमें जा बैठे। गाड़ी चल पड़ी। उनके डेरेमें आकर देखा, कि मकान दोमञ्जिला था। एक घरमें मैं पहलेही घुस गयी और भीतरसे किवाड़ बन्द कर दिया। स्वामी बाहर ही रहे।

वे किवाड़ खोलनेके लिये बाहरसे अधीरताके साथ प्रार्थना करने लगे। मैंने हंसते-हंसते कहा—"मैं अब आपकी ही दासी हुई, जब आपके घरमें आ गयी तब फिर इतनी घबराहट क्यों? मुझे यह देखना है कि आपके प्रणयका वेग कल सवेरेतक ठहरता है या नहीं, यदि कल ऐसा ही प्रेम देखूंगी तब मैं आपके साथ खुलकर बात करूंगी। आज यहींतक।"

मैंने द्वार नहीं खोला, हारकर उन्होंने दूसरी जगह विश्राम किया। जेठ महीनेकी असह्य गरमीसे अत्यन्त तृषापीड़ित रोगीको स्वच्छ-शीतल जलसे भरे हुए जलाशयके किनारे बिठाकर उसका मुंह बांध देनेसे जैसे वह पानी नहीं पी सकता—तरसकर भी प्यास नहीं बुझा सकता—पानीमें उसकी प्रीति बढ़ेगी या नहीं?

दिन ज्यादा चढ़ आनेपर मैंने द्वार खोला, देखा, कि स्वामी द्वारपर आकर खड़े हैं। मैंने अपने हाथसे उनका हाथ पकड़कर कहा, प्राणनाथ या तो मुझे रामदत्त बाबूके घर भेज दो या एक सप्ताह मेरे साथ प्रेमालाप न करो।

यह सप्ताह आप अपनी परीक्षाका समझें। उन्होंने साप्ता-हिक परीक्षाको स्वीकार कर लिया।

सोलहवां परिच्छेद



पुरुषको दग्ध करनेके लिये जो कुछ उपाय विधाताने स्त्रियोंको दिये हैं, मैंने उन सभी उपायोंका अवलम्बन करके सात दिनोंतक स्वामीको खूब ही सन्तप्त किया। मैं स्त्री-जाति कैसे मुंह खोलकर वह सब बात कहूं? अगर मैं आग जलाना नहीं जानती तो गतरात्रिमें ही सम्भव था आग बुझ जाती और उसमें इतनी ज्वाला नहीं रहती। लेकिन मैंने किस तरह आग जलाई, किस प्रकार उसे धधकाया, कैसे घी डालकर उसे प्रज्वलित किया, किस तरह स्वामीके हृदयको जलाया: संकोचवश अब उसकी एक भी बात नहीं बोल सकती। यदि मेरी किसी पाठिकाने प्रेमास्त्रसे नरहत्याका व्रत ग्रहण किया होगा और सफ-लता प्राप्तकी होगी तो वही समझेगी अथवा कोई पाठक यदि कभी ऐसी प्रेम-पिशाचनी नरघातिनीके हाथमें पड़े होंगे तो वह भी जानेंगे। बहुत क्या कहूं स्त्री ही संसारके कण्टक हैं, हमारी स्त्री-जातिसे संसारका जितना अनिष्ट होता है, उतना पुरुषसे नहीं होता। कुशल इतनी ही है

कि, यह नर घातिनी विद्या सब स्त्रियां नहीं जानती, जानतीं तो इतने दिनोंमें पृथिवी लोकशून्य हो जाती।

उस सप्ताहतक मैं बराबर स्वामीके पास ही— आदर और नियमके साथ बात करती, एक भी नीरस बात नहीं बोलती। हंसना, ताकना, अङ्गराई, जम्हाई आदि लेना ये सब तो साधारण स्त्रियोंके अस्त्र हैं। पहले दिन मैंने उनका पूरा सम्मान करके बात की; दूसरे दिन अनुरागका लक्षण दिखलाया, तीसरे दिनसे उनके घरके काम धन्दोंमें हाथ डाला; जिसमें उनके भोजन, शयन और अस्नान आदि नित्य कृत्यमें किसी तरहकी बाधा न पड़े, इसकी सुव्य· वस्था करने लगी। अपने हाथसे रसोई करती, दांत खोदनेके तिनकेतक स्वयं प्रस्तुत कर रखती थी। अपने हाथसे उनकी सेवा करती और उनके मनको शान्त रख- नेकी यथासाध्य चेष्टा करती थी।

अब हाथ जोड़कर मैं आप लोगोंसे निवेदन करती हूं कि आप लोग यह न समझें कि यह सब बनावटी था। इन्दिरा मनमें इतना गर्व जरूर रखती है कि भरणपोषणके लोभसे या स्वामीके धनसे धनेश्वरी होनेकी तृष्णासे यह सब नहीं कर सकती, स्वामी पानेकी इच्छासे कृत्रिम प्रेम नहीं दिखा सकती थी; इन्द्रकी इन्द्राणी बननेके लोभसे भी ऐसा नहीं कर सकती। मैं स्वामीका मन मोहनेके लिये

हंसकर कुटिल दृष्टिसे देखनेका आडम्बर कर सकती हूं; किन्तु स्वामीको मोहित करनेके लिये कृत्रिम प्रेमका जाल नहीं बिछा सकती। भगवानने इन्दिराको उस मिट्टीसे नहीं बनाया! जो अभागिनी इस बातको न समझ सकेंगी, जो दुराशया मुझसे कहेंगी—तुम मृदु मुसकानके साथ कटाक्ष बाणका प्रक्षेप कर सकती हो, चोटी खोलकर फिर बाँध सकती हो, बात करनेके बहाने सुगन्धसनी कुटिल अलकावली (चोटी) हतभाग्य पुरुषके गालमें भिड़ाकर उसे रोमाञ्चित कर सकती हो—और कुछ नहीं कर सकती—उनका पैर दाबते समय या चिलम बोझते समय—जो हत्-भागिनी मुझको ऐसी बात कहेगी, वह दग्धमुखी मेरा यह जीवन वृत्तान्त न पढ़े।

सब स्त्रियां एक स्वभावकी नहीं होतीं, तुम पांच भी तो पांच प्रकारकी हो। पुरुष पाठकोंकी बात मैं ग्राह्य नहीं करती—वे लोग इस विद्याकी बात क्या जानेंगे—तुमलोगों-को असल बात समझा कर कहती हूं। सुनो, वे मेरे स्वामी थे—पति-सेवामें ही मुझे आनन्द मिलता था—इसलिये कोई काम कृत्रिम नहीं—सब कुछ मैं हृदयसे कर रही थी। मनमें सोच रही थी कि यदि कदाचित् ग्रहण नहीं करें तो मेरे लिये संसारका असली सुख, जो कभी मिला नहीं और फिर मिल भी नहीं सकता, वह आखिर

यही कुछ दिन सही जी भरकर भोग तो कर लूं। इसीसे जी जान लगाकर पति-सेवा कर रही थी। इसमें मुझे कितना सुख मिलता था, वह तुम लोगोंमें कोई समझेगी, कोई न समझेगी।

पुरुष पाठकोंपर दया करके केवल हंसी और चितवनका तत्व समझाऊंगी। बुद्धि केवल कालेजकी परीक्षा देनेसे ही सीमातक पहुंचती है, वकालतसे दस रुपया ला सकनेहीपर जो विश्वविजयिनी प्रतिभा मानी जाती है, जिसका अभाव ही राजद्वारमें विशेष सम्मानित है, उस बुद्धिके भीतर पति-भक्तिका तत्व प्रवेश कराया नहीं जा सकता। जो लोग कहते हैं कि विधवाका फिर ब्याह कर दो, स्त्रियोंको पढ़ाकर विविध शास्त्रोंमें निष्णात कर दो, वे लोग पतिभक्तिका तत्व क्या समझेंगे? तो हंसी-चितवनका तत्व जो मैं दया करके समझाना चाहती हूं, उसका कारण एक बड़ी मोटी बात है। जिस तरह महावत अङ्कुशसे हाथीको वश करता है, कोचवान घोड़ेको चाबुकसे वश करता है, चरवाहा मवेशियोंको लाठीसे वश करता है और जैसे अंगरेज आंखे लाल करके बाबुओंको वश करता है, उसी तरह हमलोग मुस्कुराहटके साथ ताककर तुम लोगोंको वशमें करती हैं। हमलोग जो पति-भक्ति करती हैं, वह हम लोगोंका गुण है। हमलोग जो

हंसने ताकनेके कुत्सित कलङ्कसे कलङ्कित होती है, वह दोष तुम्हारा है।

तुम लोग कहोगे, कि यह बड़े अहङ्कारकी बोली है। यह ठीक है—हमलोग मिट्टीके घड़ेके समान हैं, जो अहङ्कार-में फूलकर फट जाती हैं। मैं भी अपने इस अहङ्कारका फल हाथ ही हाथ पा रही थी। जिस देवताको* अङ्ग नहीं है; लेकिन धनुषवाण है, मां बाप नहीं† है, फिर स्त्री है—फूलका वाण—वह वाण ऐसा तीव्र है जिससे पहाड़ भी फट जाता है। वही देवता स्त्री-जातिके गर्वको खर्व करते हैं। मैं अपने विहँसन चितवनके फन्देमें दूसरेको फंसाकर स्वयं भी फंस गयी। आग प्रज्वलित कर दूसरेको जलाया और आप भी जली। होलीके दिनमें अबीर खेलनेकी तरह दूसरेको रङ्ग डालने जाकर आप भी अनुरागके रङ्गमें रंग गयी। उनके मनोहर रूपका वर्णन तो कर ही चुकी हूं—जो देखकर मेरे नेत्र लुब्ध हो गये थे, उसपर फिर यह भी जाना कि जिनका ऐसा सुन्दर स्वरूप है, वह मेरे ही हृदय-देवता हैं। उन्हींके सुहागसे मैं सुहागिन हूं, उन्हींके रूपसे मैं रूपवती हूँ।

उसके बाद यह अग्निकाण्ड! मैं हँसना जानती हूं, क्या इस हँसीका जवाब नहीं है? मैं ताकना जानती हूं,

---

* अनङ्ग कामदेव † भगवान

ताकनेका बदला क्या ताकना नहीं होता ? मेरे होंठ दूरसे मुखचुम्बनकी आकांक्षामें विकशित होते थे, फूलकी कली, पत्ते खुल जानेसे खिल उठी थी, उनका बन्धूक पुष्पके समान लाल अधर क्या वैसे ही प्रफुल्ल होकर मेरी ओर उत्सुक होना नहीं जानता था ? अगर मैं उनकी हँसीमें, उनकी चितवनमें, उनकी चुम्बनाकांक्षामें कुछ भी इन्द्रिय-सुख भोगनेकी चाहका लक्षण देख पाती, तो मेरी ही जीत होती। लेकिन वह बात नहीं। उस हँसीमें, उस चितवनमें उस ओष्ठविस्फुरणमें केवल असीम स्नेह और अपरिमित प्रेम भरा था। इसलिये हार मेरी ही हुई। हारकर स्वीकार किया कि, यही संसारका पूरा सुख है। जिस देवताने इनके साथ विवाहका सम्बन्ध जोड़ा है, उसका अङ्ग जल कर जो भस्म हो गया, वह अच्छा हुआ।

परीक्षाका समय पूरा हो चला, किन्तु मैं उनके प्रेमकी ऐसी अधीना हो गयी थी कि परीक्षाका समय व्यतीत हो जानेपर यदि वे मुझे मार पीटकर निकाल भी देते, तो मैं उन्हें छोड़कर नहीं जाती। कदाचित् वे मेरा प्रकृत परिचय पाकर मुझे स्त्रीकी तरह ग्रहण न कर वेश्याकी तरह भी रखते तो भी मैं उनके पास रह जाती। स्वामीको पानेपर लोक-लज्जाका भय नहीं करती। किन्तु भाग्यमें यह सुख भी न लिखा हो, यह सोचकर कभी-कभी रोने लगती थी।

पीछे यह बखूबी समझ गयी कि प्राणनाथके पंख कट गये हैं, अब उनमें उड़नेकी शक्ति नहीं है। उनकी प्रेमाग्निमें अपरिमित घीकी आहुति पड़ रही थी। वे सब काम धन्धोंको छोड़ दिनरात केवल मेरा मुंह निहारा करते थे। मैं घरका काम करती थी, वे लड़केकी तरह मेरे पीछे-पीछे घूमते थे। उनके मनका दुर्दमनीय वेग पग पगमें देख पाती थी। किन्तु मेरा इशारा पाते ही वे स्थिर हो जाते थे। कभी-कभी मेरे मुंहकी ओर देखकर रोते और कहते थे कि मैं इस सप्ताह तुम्हारे वाक्यका पालन करूंगा—तुम मुझे छोड़कर मत चली जाओ। फलतः मैंने देखा कि, मैं अगर इन्हें छोड़ दूं तो इनकी हालत बहुत खराब हो जायगी। परीक्षाका दिन पूरा हो गया। सात दिन बीत जानेपर बिना कुछ कहे-सुने ही दोनोंने दोनोंकी हृदयसे अधीनता स्वीकार की। चिर दिनकी प्रेमपिपासा शान्त हुई। उन्होंने मुझे कुलटा समझा, उसे भी मैंने सह लिया। लेकिन मैं चाहे जो होऊं, हाथीके पैरमें जंजीर डाल दी है, यह मैं भलीभांति समझ गयी।

———

सत्रहवां परिच्छेद



हमलोग कलकत्तेमें कितने ही दिन सुख स्वच्छन्दसे रहे। उसके बाद मैंने देखा, एक दिन मेरे स्वामी हाथमें एक चिट्ठी लिये बड़ी उदासीके साथ बैठे हुए हैं। मैंने पूछा, इतने उदास क्यों? कैसी चिन्ता है?"

वे बोले—"घरसे चिट्ठी आयी है, घर जाना होगा।"

मैं सहसा बोल उठी—"और मैं?" मैं खड़ी थी, वहीं जमीनपर बैठ गयी। मेरी आंखोंसे आंसू टपकने लगे।

उन्होंने बड़े स्नेहसे मेरा हाथ धरकर उठाया और मुंह चूमकर आंसू पोंछ दिये। बोले, "यही बात मैं भी सोच रहा था। तुम्हें छोड़कर नहीं जा सकूंगा।"

मैं—वहां क्या कहकर मेरा परिचय लोगोंसे दीजियेगा। कहां, कैसे रखियेगा?

वे—यही सोच रहा हूं। वह शहर तो है नहीं जो किसी दूसरी जगहमें रख दूंगा, जिससे किसीकी नजर तुम्हारे ऊपर न पड़े। मां-बापकी आंखोंके सामने तुम्हें कैसे रक्खूंगा?

मैं—"नहीं जानेसे क्या न बनेगा?"

वे—नहीं, जाना ही होगा।

मैं—कितने दिनोंमें लौटेंगे? अगर जल्दी लौट आवें तो मुझे यहीं रख जाइये।

वे—शीघ्र लौट आनेकी तो उम्मीद नहीं है। हमलोग कलकत्ते संयोगसे ही आते हैं।

मैं—आप जाइये, मैं आपका जवाल होना नहीं चाहती। (खूब रोते रोते यह बात कही) मेरे नसीबमें जो लिखा है, वही होगा।

वे—लेकिन मैं तो तुम्हारे विरहमें पागल हो जाऊंगा।

मैं—मैं आपकी विवाहिता स्त्री तो हूं नहीं—(स्वामीका शरीर सिहर उठा) आपके ऊपर मेरा कुछ दावा तो है नहीं—इस समय आप मुझको विदा—

उन्होंने अपने हाथसे मेरा मुंह बन्द करके कहा—"आज इन बातोंको जाने दो। अभी यह सब बोलनेकी जरूरत नहीं है। मुझे आज सोचने दो, जो सोचकर स्थिर करूँगा वह कल तुमसे कहूंगा।"

दिनके तीसरे पहर उन्होंने रमण बाबूको आनेके लिये और एक पत्र भेजा, लिखा—"गोपनीय बात है। चिट्ठीमें लिख नहीं सकता। यहां आपके आनेपर कहूंगा। जरूर आइये।"

रमण बाबू आये। मैं किवाड़की आड़में खड़ी होकर

उन दोनोंकी बात सुनने लगी। स्वामीने रमण बाबूसे पूछा, "आपकी जो वह रसोइया—जो कम उम्रकी है, उसका नाम क्या है ?"

रमण—"कुमुद ।"

उपेन्द्र—"उसका घर कहां है ?"

र—"अभी नहीं कह सकता ।"

उ—"सधवा है या विधवा ?"

र—"सधवा ।"

उ—"उसके स्वामीको जानते हैं ?"

र—"जानता हूं ।"

उ—"कौन है ?"

र—"इस समय कहनेका मेरा अधिकार नहीं ।"

उ—"क्या इसके भीतर कोई गुप्त रहस्य है ?"

र—"हां, है ।"

उ—"आपने उसे कहां पाया ?"

र—"मेरी स्त्री उन्हें अपनी मौसीके पाससे ले आयी।

उ—"अच्छा, इन सब बातोंको जाने दीजिये, यह बताइये कि उसका चरित्र कैसा है ?"

र—"अति उत्तम, निर्दोष। हमारी बूढ़ी महराजिनको बहुत चिढ़ाती थी। इसके सिवा उसमें कभी कोई दोष नहीं पाया गया।"

उ—"स्त्रियोंमें जो चरित्र-दोष होता है, उसकी बात पूछ रहा हूं।"

र—"ऐसा विशुद्ध चरित्र देखनेमें नहीं आता।"

उ—"उसका घर कहां है, आप क्यों नहीं बतलाते?"

र—"बतलानेका अधिकार नहीं है।"

उ—"उसके स्वामीका घर कहां है?"

र—"इसका भी वही उत्तर।"

उ—"स्वामी जीता है?"

र—"जीता है, तभी तो वह सधवा है।"

उ—"आप उसको पहचानते हैं?"

र—"हां, पहचानता हूं।"

उ—"वह स्त्री अब कहाँ है?"

र—"आपके इसी मकानमें।"

स्वामी महोदय चौंक उठे। विस्मित होकर पूछा, आपने यह कैसे जाना?"

र—"यह कहनेका मेरा अधिकार नहीं। आपकी जिरह क्या अभीतक खतम नहीं हुई?"

उ—"हां साहब, अब खतम हुई। लेकिन आपने तो पूछा नहीं कि मैं यह सब बात क्यों आपसे पूछ रहा हूं?"

र—"दो कारणोंसे नहीं पूछा; एक तो यही कि पूछनेसे आप बतलायेंगे नहीं, कहिये यह सच है न?"

उ—"दूसरा कारण क्या है ?"

र—"मैं जानता हूं, जिस लिये आप पूछ रहे हैं।"

उ—"वह भी जानते हैं ? अच्छा बताइये तो ?"

र—"वह नहीं बताऊंगा।"

उ—"अच्छा, देखता हूँ। आप तो सब जानते हैं। कहिये, मैं जिस बातका पता लगा रहा हूँ, लग सकता है या नहीं ?"

र—"खूब लग सकता है। आप कुमुदसे पूछियेगा।"

उ—"और एक बात। आप कुमुदके सम्बन्धमें जो जानते हैं, वह एक कागजपर लिखकर दस्तखत करके दे सकते हैं ?"

र—"दे सकता हूं—एक शर्तपर। मैं लिखकर एक लिफाफेके भीतर बन्दकर सिल मुहर देकर कुमुदको दे जाऊंगा। आप इस समय उसे नहीं पढ़ सकेंगे। देश जाकर पढ़ेंगे। कहिये यह बात कबूल है न ?"

मेरे स्वामी बड़ी देरतक सोचकर बोले—"हां कबूल है। मेरे अभिप्रायका पोषक आप होंगे न ?"

र—"हूंगा।"

कुछ देरतक फिर इधर-उधरकी बातें हुईं। उसके बाद रमण बाबू चले गये। उ—बाबू मेरे पास आये।

मैंने पूछा, "यह सब बातें क्यों हो रही थीं ?"

वे—"क्या तुमने सब बातें सुनी हैं?"

मैं—"हां सब सुन चुकी हूँ। मैंने तो तुम्हारी जान लेकर अपनी जान दे दी, खून करके फाँसी पा चुकी। फाँसीके बाद फिर तदारुक क्यों?"

वे—"आज कलके कानूनमें यह होना असंगत नहीं है।"

अठारहवां परिच्छेद

उस दिन मेरे पति-देवता दिन रात उसी उधेड़-बुनमें लगे रहे। मुझसे विशेष बातचीत न कर सके। मुझको देखते ही मेरे मुंहकी ओर उनकी टकटकी बंध जाती। उनसे भी अधिक चिन्ता मुझे थी, उन्हें चिन्तित देखकर मेरे मनमें बड़ी यन्त्रणा होने लगी। मैं अपने दुःखको हृदयमें दबाकर उन्हें समझाने और धीरज बंधानेकी चेष्टा करने लगी। अनेक प्रकारके फूलोंकी माला, फूलोंकी गेंद, गुल-दस्ते आदि बनाकर उपहारमें दिये। सुगन्धित पानके बीड़े लाये। अनेक प्रकारकी सामग्री तैयार की। स्वयं रो रही थी, तोभी उनके पास बैठ कर रस भरी बातोंकी अवतारणा की। मेरे स्वामी रोज़गारी लोग थे—सबसे बढ़-कर काम धन्धेकी बातको ज्यादा पसन्द करते थे, यह सोच

कर मने गृहकृत्य-सम्बन्धी बातोंका उत्थान किया। मैं हर-मोहन दत्तकी बेटी होकर घरबारके कामोंको न समझूं, ऐसा हो नहीं सकता था। सब उपचार करके थक गयी, परन्तु किसीसे कुछ न हुआ। मेरे रुदनपर और भी रुदन बढ़ा।

दूसरे दिन सवेरे स्नान और जलपान करके उन्होंने मुझे पास बिठाकर कहा, "आशा करता हूं। मैं जो सब बात पूछूंगा, उनका तुम यथार्थ उत्तर दोगी?"

मुझे रमण बाबूके साथ जिरह करनेकी बात याद हो गयी। मैंने कहा—"जो कहूंगी सच ही कहूंगी। लेकिन सब बातोंका जवाब नहीं दे सकूंगी।"

उन्होंने पूछा, "सुना है, तुम्हारे स्वामी जीते हैं। उनका नाम-धाम प्रकट करोगी?"

मैं—"अभी नहीं, कुछ दिन बाद।"

वे—"तुम्हारे स्वामी, इस समय कहां हैं, कह सकती हो?"

मैं—"इसी कलकत्तेमें।"

वे—"(जरा चौंककर) तुम कलकत्तेमें, तुम्हारे स्वामी कलकत्तेमें, तब तुम उनके पास क्यों नहीं रहती?"

मैं—"उनके साथ मेरा परिचय नहीं।"

पाठकगण, देखिये, सब बात सत्य ही कह रही हूं।

मेरे स्वामी यह उत्तर सुनकर विस्मित हो बोले, "यह क्या! स्त्री-पुरुषोंमें परिचय नहीं? बड़े आश्चर्यकी बात है!"

मैं— "क्या सबको होता है? क्या आपको अपनी स्त्रीके साथ परिचय है?"

वे कुछ सहमकर बोले—"चंद्र ऐसी घटनायें दुर्दैवसे हो जाती हैं।"

मैं—"यह दुर्दैव सबके साथ लगा है।"

वे—"अच्छा यह बताओ, भविष्यमें तुम्हारे ऊपर उनके कोई दावा करनेकी तो सम्भावना नहीं है?"

मैं—"यह मेरे हाथमें है। अगर मैं उनके निकट अपना परिचय दूं तो क्या होगा नहीं कह सकती।"

वे—अच्छा तो, तुमसे सब बात खोलकर कहता हूं। तुम बड़ी बुद्धिमती हो, यह मैं समझ गया हूं। तुम क्या सलाह देती हो?"

मैं—"किस विषयमें सलाह लेना चाहते हैं?"

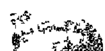
वे—"घर जानेके विषयमें। मुझे घर जाना ही होगा।"

मैं "समझ गयी।"

वे—"घर जानेपर शीघ्र लौट नहीं सकूंगा।"

मैं—"यह भी मालूम है"

वे—"तुम्हें छोड़ कर कैसे जाऊं? तुम मेरे साथ न जाओगी तो मैं मर ही जाऊंगा।"



मेरे प्राण कण्ठगत थे, तो भी एक बार ठहाकेकी हंसी हँसकर बोली-"भात बिखरानेपर कौवोंका अभाव क्या ?"

वे—"कोयलका अभाव कौवेसे पूरा नहीं होता। मैं तुमको अपने साथ ज़रूर ले जाऊंगा ,"

मैं—"ले जाकर कहां रखियेगा ? लोगोंके पूछनेपर मेरा क्या परिचय दीजियेगा ?"

वे—"एक भारी जाल रचूंगा। वही कल दिनभर मैंने सोचा है। तुमसे वह बात अभीतक नहीं कही है।"

मैं—"क्या यही न कहियेगा कि इन्दिराको रामदत्त-बाबूके घरमें पाया है ?"

वे—"अरे ! तुम कौन हो ?"

स्वामी स्तब्ध होकर दोनों आंखोंकी पुतलियोंको ऊपर चढ़ा मेरे मुंहकी ओर ताकने लगे। मैंने पूछा, "क्यों ? क्या हुआ है ?"

वे "इन्दिरा नाम तुमने कैसे जाना ? और मेरे मनका गुप्त अभिप्राय ही क्योंकर समझ गयी ? तुम मानवी हो या कोई मायाविनी ?"

मैं—"यह परिचय पीछे दूंगी। अभी मैं आपसे जिरह करूँगी, ठीक ठीक जवाब दीजिये।"

वे—"(डरते हुए) कहो।"

मैं—"उस दिन आपने मुझसे कहा था कि स्त्रीके पाने-

पर भी आप उसे ग्रहण न करेंगे। उसे डाकू पकड़कर ले गये हैं। उसके ग्रहण करनेसे आपकी जाति जायगी। मुझे इन्दिरा कहकर घर ले जानेपर क्या अब वह भय नहीं रहेगा ?"

वे—"रहेगा क्यों नहीं—खूब रहेगा। उस समय मेरे प्राणपर कोई संकट न था—इस समय मेरी जानपर आ पड़ा है! जाति बड़ी या प्राण ? और सच पूछो तो वह उतना बड़ा संकट भी नहीं। इन्दिरा जाति-भ्रष्ट हुई, यह बात किसीके मुंहसे आजतक नहीं सुनी है। काला पोखरमें जिन लोगोंने डकैती की थी, वे सब पकड़े गये हैं। उन सबने एक स्वरसे कहा है कि उन लोगोंने इन्दिराके भूषण-वस्त्र आदि छीनकर उसे छोड़ दिया। उसके साथ उन लोगोंने किसी तरहका दुर्व्यवहार नहीं किया। अब वह कहाँ गयी, क्या हुई, जीती है या मर गयी यह कोई नहीं जानता। मिल जानेपर एक कलङ्क-रहित वृत्तान्त अनायास ही गढ़कर कहा जा सकता है। आशा करता हूँ, रमण बाबू जो लिख देंगे उससे उस बातकी पुष्टि होगी। उसपर भी यदि कोई बात उठेगी तो गांवमें कुछ सामाजिक दण्डसे ही सब बखेड़ा मिट जायगा। हमारे पास रुपया है, रुपयेसे सब लोग वशमें आ सकते हैं।"

मैं—"अगर वह आपत्ति कट जाय तो फिर और आपत्ति ही क्या है ?"

वे—"बखेड़ा तुमको लेकर है। तुम नकली इन्दिरा हो, अगर तुम कहीं पकड़ी जाओ ?"

मैं—"आपके घरमें न तो मुझे कोई पहचानता है, न इन्दिराको ही। केवल एक बार बाल्यावस्थामें उसे आप लोगोंने देखा था, तब फिर मैं कैसे पकड़ी जा सकती हूं ?"

वे—"बातसे। नया आदमी परिचित मनुष्य बननेपर सहज ही बातोंसे पकड़ा जाता है।"

मैं-"न हो तो, आप पहलेसे ही सब बातें मुझे सिखा-पढ़ा दीजियेगा।"

वे-"यह तो सोचा है, लेकिन सब बातें तो सिखलायी नहीं जा सकतीं। जो बात सिखलाना मैं भूल जाऊं; वह बात कोई पूछ बैठे तब क्या जवाब दोगी ? मिथ्या उत्तर देनेसे ही पकड़ी जाओगी। मान लो, कदाचित् असल इन्दिरा आकर उपस्थित हो तो दोनोंमें असल कौन है, इसके विचार-कालमें बीती हुई बात पूछी जानेपर तुम्हीं झूठी बनोगी।"

मैं कुछ हारीसी बनकर बैठी। ऐसी अवस्थामें हँसी आप ही आती है। किन्तु अभी अपना असल परिचय देनेका समय नहीं हुआ था। इसलिये मैंने हंसकर कहा—"मुझे कोई किसी बातमें भुला नहीं सकता। आप अभी मुझसे पूछ रहे थे न, कि 'मानवी हो या मायाविनी।' मैं

मानुषी नहीं हूं। (वे सुनकर काँप उठे) मैं कौन हूं, यह पीछे कहूंगी। अभी इतना ही कहूँगी कि मुझे कोई भुला नहीं सकता।"

स्वामी सुनकर चुप हो रहे। वे बुद्धिमान् कामकाजी आदमी थे। नहीं तो इतने थोड़े दिनोंमें इतने रुपये कमाकर नहीं ला सकते। बाहरसे काठकी तरह कुछ नीरस थे। पाठक इसे आप ही समझेंगे–लेकिन हृदय उनका बड़ा ही स्निग्ध और कोमल था। रमण बाबू या आजकलके लड़कोंकी भांति वे उच्च शिक्षामें शिक्षित न थे। वे देवी-देवको खूब मानते थे। उन्होंने अनेक देश-भ्रमण करके भूत, प्रेत, डाकिनी, योगिनी और मायाविनी आदिकी कहानियाँ सुनी थीं। उनपर कुछ विश्वास भी करते थे। वे मेरे द्वारा जैसे मोहित हुए थे, वह भी उन्हें इस समय स्मरण हुआ। जिसे मेरी असाधारण बुद्धि कहते थे, उन्हें वह भी स्मरण हुआ। जो बात उनकी समझमें नहीं आती थी, उसपर भी ध्यान गया। इसलिये मैंने जो कहा कि मैं मानवी नहीं हूं, उसपर उनका कुछ विश्वास-सा हो गया। वे कुछ देरतक स्तब्ध हो रहे। लेकिन उसके अनन्तर उन्होने अपने बुद्धिबलसे उस विश्वासको दूर करके कहा—"अच्छा, तुम कैसी मायाविनी हो, मैं जो पूछता हूं उसका जवाब दो तो समझूँ ?"

मैं—"पूछिये।"

वे—"मेरी स्त्रीका नाम इन्दिरा है यह तुम जानती हो, उसके बापका नाम क्या है ?"

मैं—"हरमोहनदत्त।"

वे—"उनका घर कहां है ?"

मैं—"महेशपुर।"

वे—"तुम कौन हो!!!"

मैं—"यह तो कह चुकी हूँ कि पीछे बताऊंगी, इतना जान रक्खो कि मैं मनुष्य नहीं हूँ।"

वे—"तुमने कहा था, तुम्हारे बापका घर कालापोखरके पास है। वहांका आदमी यह सब बात किसीके द्वारा सुनकर जान सकता है। यह तो बताओ, हरमोहनदत्तके घरका सदर दरवाजा किस दिशाकी ओर है ?"

मैं—"दक्षिणको। बड़े फाटकके दोनों पार्श्वोंमें दो सिंहकी मूर्तियां हैं।"

वे—"उनके कितने लड़के हैं ?"

मैं—"एक।"

वे—"उसका नाम ?"

मैं—"वसन्तकुमार।"

वे—"उसके कै बहनें हैं ?"

मैं—"आपके विवाहके समय दो थीं।"

वे—"उनके नाम ?"

मैं—"इन्दिरा और कामिनी ।"

वे—"उनके घरके नजदीकमें कोई पोखर है ?"

मैं—"है, नाम है उसका देवीपोखर, उसमें कमलके फूल बहुत खिलते हैं ।"

वे—"हां, वह तो मैंने देखा था । तुम महेशपुरमें कभी रही होगी, इसीसे यह सब बातें बतला रही हो, इसमें आश्चर्यकी कोई बात नहीं है । अच्छा, कुछ और बतलाओ, कहो, इन्दिराका विवाह किस जगह हुआ ?"

मैं—"पूजागृहके उत्तर-पश्चिमके कोनेमें ।"

वे—"कन्यादान किसने किया ?"

मैं—"इन्दिराके चचा कृष्णमोहनदत्तने ।"

वे—"कन्या-निरीक्षणके समय एक स्त्रीने जोरसे मेरे कान मल दिये थे । उसका नाम मुझे याद है । तुम उसका नाम बता सकती हो ?"

मैं—"हां, बिन्दु ठकुराइन, उसके बड़े-बड़े नेत्र और उड़हलके फूल-सदृश लाल होंठ थे । नाकमें नथ था ।"

वे—"ठीक है । मालूम होता है, तुम ब्याहके दिन वहां मौजूद थी । क्या उनसे किसी तरहका नाता है ?"

मैं—"नाता है, या मैं उनके घरकी दासी हूं, ऐसी दो-एक बात आप मुझसे न पूछें ।"

वे—"इन्दिराकी शादी कब हुई थी?"

मैं—"वैशाख शुक्ल त्रयोदशीको।"

वे चुप होकर कुछ देरतक सोचते रहे, उसके बाद बोले—"मुझे अभय दो तो, दो-एक बात तुमसे और पूछूं।"

मैं—"अभय देती हूं, जो पूछना हो पूछो।"

वे—"कोहबरसे सबके चले जानेपर मैंने इन्दिरासे एकान्तमें एक बात पूछी थी, उसने उसका उत्तर दिया था। कहो, मैंने क्या पूछा था?"

इसका उत्तर देनेमें मुझे कुछ देर हुई। क्योंकि उस बातका स्मरण होते ही मेरी आंखोंमें जल भर आया। मैं उसे रोकनेकी चेष्टा करने लगी। उन्होंने कहा, कि इस दफे मालूम होता है तुम फेल हो गयी। अब जाना, तुम मायाविनी नहीं हो! मैं आंखके आंसूको आंखके भीतर लौटाकर बोली, "आपने इन्दिरासे यही पूछा था कि आजसे तुम्हारे साथ मेरा क्या सम्बन्ध हुआ? इन्दिराने कहा था कि आजसे आप मेरे स्वामी हुए, मैं आपकी दासी हुई।" यह तो एक प्रश्नका उत्तर हुआ, और भी कोई प्रश्न हो तो वह भी पूछ देखिये।"

वे—"और बात पूछनेमें तो अब भय मालूम होता है। तो भी कहो, फूल-शय्या (सुहाग-रात) के दिन इन्दिराने

ठठोली करके मुझे गाली दी थी, मैंने भी उसको कुछ दण्ड दिया था, कहो वह क्या बात थी ?"

मैं—"आपने इन्दिराका हाथ पकड़कर और एक हाथ उसके कन्धेपर डालकर पूछा था, कि इन्दिरा, कहो तो मैं तुम्हारा कौन होता हूं, इन्दिराने मुस्कुराकर इस सवालका जवाब दिया था, "सुना है, आप मेरी ननदके वर हैं।" इसपर आपने उसके गालमें चुटकी लेकर कोमल दण्ड दिया था और उसे खिन्न होते देख झट उसका मुंह चूमा था। मुंह चूमनेकी बात कहते ही मेरा सर्वाङ्ग आनन्दसे कण्टकित हो उठा। मेरे जीवनका पहला मुखचुम्बन वही था। उसके बाद सुभाषिणीने सुधावृष्टि की थी। इसके मध्यकालमें बराबर अनावृष्टि रही। हृदय सूखकर मरु-भूमि बन गया था।"

मैं यह बात सोच ही रही थी, देखा कि स्वामीने धीरे-धीरे तकियेके ऊपर सिर रखकर आंखें बन्द कीं। मैंने कहा—"और कुछ पूछियेगा ?"

वे—"नहीं। या तो तुम स्वयं इन्दिरा हो, या कोई मायाविनी हो।"

उन्नीसवां परिच्छेद



देखा, अब मैं अनायास ही अपना परिचय दे सकती हूं। मेरे स्वामीके मुंहसे ही मेरा परिचय प्रकट हुआ है। लेकिन कुछ भी सन्देह रहते, मैंने परिचय न देनेकी बात स्थिर की थी, इसीसे कहा, "मैं अब अपना परिचय देती हूं, सुनिये, मेरा घर कामरूपमें है। मैं आद्याशक्तिके महा-मन्दिरमें उनके पासकी रहनेवाली हूं। लोग मुझे डाकिनी कहते हैं; लेकिन मैं डाकिनी नहीं हूं। मैं विद्याधरी हूं। मैंने महामायाके निकट कुछ अपराध किया था। उस कारण शापग्रस्त होकर यह मानवरूप धारण किया है। रसोइयाका काम और कुलटावृत्ति भी भगवतीके शापके भीतर ही जानना चाहिये। अब मुझे शापसे मुक्त होनेका समय उपस्थित हुआ है। मैंने स्तोत्रसे जगदम्बाको प्रसन्न किया है, उन्होंने आज्ञा दी है, महाभैरवीका दर्शन करते ही मैं शापसे छुटकारा पाऊंगी।"

उन्होंने पूछा—"वह कहां है?"

मैं—"महा भैरवीका मन्दिर महेशपुरमें है। आपके-श्वसुरके घरके उतर भागमें। वह उन्हींका देवीघर है।

मकानकी खिड़कीसे देवीघर जाने आनेका रास्ता है। चलिये, महेशपुर चलें।"

उन्होंने सोचकर कहा—"जान पड़ता है, आखिर तुम मेरी इन्दिरा ही निकलोगी। अगर कुमुद इन्दिरा हो तो फिर क्या कहना है। ऐसा होनेपर संसारमें मेरे समान सुखी कौन होगा?"

मैं—"चाहे जो होऊं। महेशपुर जानेसे ही सब बखेड़े मिट जायँगे।"

वे—"तो चलो, कल यहांसे यात्रा करें। तुमको काला-पोखरसे पारकर महेशपुर भेज दूंगा और मैं कुछ दिनके लिये घर जाऊंगा। तुमसे हाथ जोड़कर यही प्रार्थना करता हूं कि तुम इन्दिरा हो, या कुमुद हो, या विद्याधरी ही हो, चाहे जो हो, मुझे छोड़ना मत।"

मैं—"नहीं, शापोद्धार होनेपर भी भगवतीकी कृपासे मैं फिर तुम्हें पा सकूंगी। तुम मेरे प्राणसे भी बढ़कर प्रिय हो।"

"यह बात तो डाकिनीकीसी नहीं मालूम होती है" कहकर वे बाहरके बैठकखानेमें गये। वहां एक मुलाकाती आये थे। मुलाकाती और कोई नहीं, रमण बाबू थे; रमण बाबू मेरे स्वामीके साथ आकर मुझे पुलिन्दा दे गये। मेरे स्वामीको उस सम्बन्धमें जो उपदेश दिया था, मुझे भी

वही उपदेश दिया। अन्तमें कहा—"सुभाषिणीसे क्या कहूंगा?"

मैंने कहा—"कहियेगा, कल हम महेशपुरकी यात्रा करेंगी। वहां जानेहीपर मैं शापसे मुक्त हूंगी।"

स्वामीने रमण बाबूसे पूछा—"क्या आपको यह सब मालूम है?"

चतुर रमण बाबू बोले—"मैं सब बातें नहीं जानता, किन्तु मेरी स्त्री सुभाषिणी सब जानती है।"

बाहर जाकर स्वामी महाशयने रमण बाबूसे पूछा, "आप डाकिनी, योगिनी और विद्याधरी आदिपर विश्वास करते हैं?"

रमण बाबूको रहस्यकी बात कुछ कुछ पहलेसे ही मालूम थी। बोले—"करता हूं। सुभाषिणी बोलती थी, कुमुद शापग्रस्त विद्याधरी है।"

स्वामीने कहा—"कुमुद क्या इन्दिरा तो नहीं है, यह आप अपनी स्त्रीसे अच्छी तरह पूछकर मुझे लिखियेगा।" रमण बाबू देरतक वहां खड़े नहीं रह सके। हंसते-हंसते चले गये।

बीसवां परिच्छेद

—:o:—

इस प्रकार बात-चीत होनेके अनन्तर हम दोनों (स्त्री-पुरुष) ने यथासमय कलकत्तेसे यात्रा की। वे मुझको उस कालापोखर नामक भयानक तालाबसे आगे पहुंचाकर आप अपने घरकी ओर लौट गये। साथके आदमी मुझे महेशपुर ले गये। नौकरों और रक्षक सिपाहियोंको गांवके बाहर विश्राम करनेके लिये कहकर मैं पैदल ही गांवके भीतर प्रविष्ट हुई। पिताका घर सामने देख, एक सूनी जगहमें बैठकर खूब रोयी। उसके बाद घरमें प्रवेश किया। सामने पिताको देखकर प्रणाम किया। वे मुझको पहचान-कर आनन्दसे विह्वल हो उठे। वह सब बातें यहां कहनेका अवसर नहीं है।

मैं इतने दिन कहां थी, कैसे यहां आयी—यह सब मैंने किसीसे कुछ न कहा। मां-बापके पूछनेपर कहा, "किसी दूसरे समयमें कहूंगी।"

दूसरे समयमें संक्षेपसे अपने ऊपरकी बीती बातें उन लोगोंसे कहीं, परन्तु सब बातें नहीं कहीं। इतना समझा दिया कि अन्तमें मैं स्वामीके पास ही थी, उन्हींके यहांसे

आयी हूं और वे भी दो एक दिनके भीतर यहां आवेंगे। लेकिन कामिनीसे मैंने सब बातें खोलकर कह दी। वह मुझसे दो वर्ष छोटी थी। वह बड़ी ही हँसोड़ और रसिका थी। उसने कहा—"बहन, जब जीजा इतने बड़े गोबर-गनेस हैं तो उनको लेकर एक नकल क्यों न की जाय?" मैंने कहा, "मेरी भी यही इच्छा है।" तब हम दोनों बहनोंने इसके लिये बन्दिश बांधी। सबको सिखाकर ठीक किया। माता-पिताको भी यह बात कहला दी गयी कि वे इन्दिराके बारेमें कुछ न बोलें। कामिनीने उन लोगोंको यह बात समझा दी कि "अभीतक जीजाने बहनको पहचाना नहीं है। दूसरी स्त्री समझकर ही इसे अपने यहां आश्रय दे रक्खा था। सच्ची जान-पहचान यहीं होगी। उसका प्रबन्ध हमलोग स्वयं कर लेंगी। बहन जो यहाँ आयी है, यह बात जीजाके सामने कोई न बोले।"

दो दिन बाद जमाता पहुंचे। मेरे मां-बापने उनका यथेष्ट आदर-सत्कार किया। मेरे आनेकी बात उन्होंने बाहरमें किसीके मुंहसे नहीं सुनी और न किसीसे वे पूछ ही सके। जब वे अन्दर-जलपान करने गये तब उनका मुंह बड़ा ही उदास था।

जलपानके समय मैं उनके सामनेमें न रही। कामिनी उनके पास जाकर बैठी और दो-चार साली-सरहज उन्हें

घेरकर बैठीं। सांझ बीत चुकी थी, कामिनी कुशल-प्रश्नके साथ बहुतेरी बातें पूछने लगी, वे भी उचित उत्तर देने लगे। मैं ओटमें खड़ी होकर उन दोनोंकी कथा-वार्ता सुनने लगी। आखिर उन्होंने कामिनीसे पूछा, "तुम्हारी बहन कहां है?"

कामिनीने खूब लम्बी सांस लेकर कहा—"क्या जानूं कहां है? कालापोखरमें जो वह दुर्घटना हो गयी, तबसे तो कोई खबर मिली नहीं।"

उनका मुंह बहुत भारी हो गया, कुछ बोल न सके। वे यह समझकर कि कुमुद हाथसे निकल गयी अधीर हो उठे। उनकी आंखोंसे आंसू टपक पड़े। आंखें पोंछकर उन्होंने पूछा, "कुमुद नामकी कोई स्त्री यहां आयी थी न?"

कामिनी—"कुमुद कौन, यह मैं नहीं जानती, परसों एक स्त्री पालकीपर आयी थी सही, उसने महाभैरवीके मन्दिरमें जाकर देवीको प्रणाम किया, प्रणाम करनेके साथ एक ऐसी अद्भुत घटना हुई कि आकाशमें घटा घिर आयी, पानी बरसने लगा, बिजली चमकने लगी। वह स्त्री उसी समय हाथमें त्रिशूल लिये अग्नि-शिखाकी भांति आकाश-गामिनी होकर न मालूम कहां गयी, क्या हुई?"

मेरे प्राणनाथने जलपान करना छोड़ दिया। वे हाथ

मुंह धो बड़ी देरतक सिरपर हाथ रखे बैठे रहे, बहुत देरके बाद बोले—"जिस स्थानसे कुमुद अन्तर्धान हुई क्या वह जगह मैं नहीं देख सकता?"

कामिनी—"क्यों नहीं देख सकते! अँधेरा हो गया है, चलिये, मैं बत्ती लिये आती हूँ।"

कहकर कामिनीने इशारेसे मुझे कह दिया कि "तू आगे चल, इसके बाद मैं रोशनी लेकर उपेन्द्र बाबूको वहां ले आऊंगी।" मैं पहिले ही मन्दिरमें जाकर दालानमें बैठ रही।

कामिनी हाथमें रोशनी लिये मेरे पास मन्दिरमें हो आयी। वे आते ही मेरे पैरोंके पास पछाड़ खाकर गिरे और कुमुद-कुमुद पुकारने लगे। बोले—"अगर आयी हो; तो अब मुझे त्यागकर कहीं मत जाओ।"

उनको इस इस प्रकार विलाप करते देखकर कामिनी रुष्ट होकर बोली, "आ बहन, चली आ; यह पागल आदमी कुमुदको पहचानता है, तुझको नहीं पहचानता।"

उन्होंने व्यग्र होकर पूछा—"बहन, बहन; कौन?"

कामिनीने चिढ़कर कहा—"मेरी बहन इन्दिरा! क्या कभी उसका नाम नहीं सुना?"

कहकर निगोड़ी कामिनी बत्ती बुझाकर मेरे हाथ पकड़ कर खींच ले गयी। हम दोनों वहांसे खूब जोरसे दौड़ चलीं। वे भी कुछ प्रकृतिस्थ होनेपर हमारे पीछे-पीछे

दौड़े। लेकिन अंधेरा था,रास्ता जाना हुआ न था, चौकठकी ठोकर खाकर गिरे। हम दोनों पासहीमें थीं, दोनों बहनें दोनों ओरसे हाथ पकड़कर उन्हें उठाया। कामिनीने धीरे धीरे कहा, हमलोग विद्याधरी हैं; तुम्हारी रक्षाके लिये तुम्हारे साथ-साथ घूमती हैं।

यह कह कामिनी उन्हें खींचकर मेरे शय्या गृहमें ले आयी,वहां चिराग था। वे हमें देखकर बोले—"यह क्या! यह तो कामिनी और यह कुमुदिनी है। विद्याधरी कहां गयी?"

कामिनी क्रोधसे मुंह बनाकर बोली—"आदमी हो या कोई विलक्षण जीव? क्या इसी अक्लसे रुपया कमाते हो? क्या कुदाल तो नहीं चलाते? इन्दिरा! इन्दिरा!! इन्दिरा!!! तुम्हारी स्त्री—अपनी स्त्रीको भी नहीं पहचानते!"

तब स्वामी महाशयने आनन्दसे विमुग्ध होकर कामिनी को ही छातीसे लगाया। वह उनके गालमें एक गुलचा मारकर हंसते २ बाहर चली गयी।

उस दिनके आनन्दकी बात कही नहीं जाती। घरमें खूब उत्सव हुआ। उस रातमें कामिनी और उ—बाबूमें प्रायः सैकड़ों बार वाग्युद्ध हुए। पर सब दफे प्राणनाथकी ही हार हुई।

इक्कीसवां परिच्छेद

०००००००

कालापोखरकी डकैतीके बाद मेरे अदृष्टमें जो सब घटनायें हुई थीं, स्वामीने अब मेरे मुंहसे सुनीं। रमण बाबू और सुभाषिणीने जिस चालाकीसे उन्हें कलकत्ते बुला लिया था, वह भी सुना। कुछ क्रोध करके बोले, "मुझको इतना घुमाने फिरानेकी क्या जरूरत थी?" क्या जरूरत थी, यह मैंने उन्हें समझा दिया। वे सन्तुष्ट हुए। लेकिन कामिनी खुश न हुई। उनसे बोली, तुमको कोल्हूमें घुमाये बिना योंही छोड़ दिया, यह मेरी बहनका ही दोष है। फिर बोली यहांतक कि ग्रहण नहीं करूंगा। अरे! जब हमलोगोंके रंगे पैरोंके सिवा तुम्हारे जीवनकी गति विधि नहीं, तब इतनी डींग काहेकी?"

उ—बाबूने इस दफे कुछ व्यङ्ग करके कहा—"तुम लोग अनेक रूप धारण करती हो! तुम लोगोंका पहचानना क्या सहज है?"

कामिनी—"तुम जो पहचानोगे, विधाताने यह तुम्हारे ललाटमें लिखा ही नहीं। कृष्णलीलामें क्या सुना नहीं है—एक ग्वाली गायने श्रीकृष्णसे कहा हे श्यामसुन्दर!

तुम्हें कौन पहचाने, हम तो केवल यमुना-तटकी हरी-हरी कोमल घासोंको पहचानती हैं, कानसे वंशीध्वनि सुनकर ही तुम्हारे पदका अनुसरण करती हैं, तुम्हारे चरणमें जो ध्वजा, वज्र, और अंकुश आदि चिह्न हैं, वह हम पशु होकर क्या पहचानेंगे ?"

मैं अब हंसीको नहीं रोक सकी। उ—बाबूने सकुच-कर कामिनीसे कहा—"जाओ, ज्यादा मत जलाओ। तुमने कृष्णके लीलाका पद गाकर सुनाया है, उसके पुरस्कारमें यह पानके बीड़े लो।"

कामिनी—"देख बहन, जीजा बिलकुल वही नहीं हैं, देखती हूं, इन्हें कुछ बुद्धि भी है।"

मैं—"क्या बुद्धि देखी ?"

कामिनी—"बाबूने पान अपने हाथमें रख सिर्फ पत्तेका दोना मुझे दिया है। बहन, तू अब एक काम कर, बीच बीचमें इन्हें अपने पैरोंपर हाथ फेरने दे—इससे इनका हाथ कुछ बड़ा होगा।"

मैंने कहा—"क्या मैं उनको अपना पैर छूने दे सकती हूं ? वे मेरे पतिदेवता हैं।"

कामिनी—"देवता कब हुए ? पति हों तब तो देवता ; इतने दिन तो तुम्हारे उपदेवता ही थे।"

मैं-"जबसे उनकी विद्याधरी गई है, तबसे देवता हुए हैं।"

कामिनी—"अहा ! विद्याको पकड़ने जाकर इन्होंने ठोकर भी खायी पर उसे पकड़ भी नहीं सके। इसलिये देखो जीजा, तुम्हारी जो विद्याधरी है, उसके साथ छेड़-छाड़ न करना ही अच्छा है। वह विद्या, बड़ी उड़नबाज़ है, अगर उड़ जायगी तो फिर पकड़ाई न देगी।"

मैं—"कामिनी, तू बड़ी शैतान है। तूने इनका सब नतीजा कर छोड़ा।"

कामिनी—"मैंने तो कुछ भी नहीं किया है। कमसरि-यटमें काम करके इन्होंने आप ही अपनी दुर्गति कराई है।"

उ—बाबू—"जो कुछ कहना हो, कहो, मुग्धाकी बातको कौन बुरा माने। अमृतं बालभाषणम्।"

कामिनी—"ठीक है। तुमने जब विद्याधरी शासितं, तब तुम्हारी बुद्धि नाशितम्। अच्छा तो मैं गच्छतं, मां मुझे पुकारतम्।"

यथार्थमें मां उस समय कामिनीको पुकार रही थी।

कामिनीने मांके पाससे लौटकर कहा—"जानते हो, मां मुझे क्यों पुकारती थी ? तुम दो दिन यहां और ठहरते नहीं तो जोर करके राखतम्।"

मैंने उ—बाबूके मुंहकी ओर और उन्होंने मेरे मुंहकी ओर देखा।

कामिनी—"क्यों परस्पर ताकतम्।"

उ-बाबू—"भाचितं शोचतम् ।"

कामिनी—"घर जाकर शोचतं । अभी दो दिन यहां स्थिर रहतम्, हसतं, खेलतं, हेलतं, दुलितं, नाचितं, गायितम् ।"

उ-बाबू—"क्यों कामिनी, तुम नाचोगी नहीं ?"

कामिनी—"धत्तेरी ! मैं क्यों नाचूंगी ? मैंने जंजीर खरीद रक्खी है—तुमको नाचना होगा ।"

उ—"बाबू तुमने तो मुझको आते ही नचाया, अब कितना नचाओगी ? अब जरा तुम नाचो ।"

कामिनी—"तो तुम रहोगे ?"

उ-बाबू—"रहूंगा ।"

कामिनीका नाच देखनेकी आशासे नहीं । मेरे मां बापके अनुरोधसे उ-बाबूने और एक दिन रहना स्वीकार किया । वह दिन भी बड़ी खुशीमें कटा । सांझ होनेके अनन्तर पड़ोसकी स्त्रियां झुण्ड बांध-बांधकर आयी और मेरे स्वामीको चारों ओरसे घेरकर बैठीं । उस प्रकाण्ड भवनके एक कोनेके घरमें स्त्रियोंकी सभा जुटी ।

कितनी स्त्रियां आयीं, उनकी गिनती नहीं । सभी भांतिके भूषण वस्त्रोंसे सुसज्जित थीं । रूप-रङ्गमें एकसे एक बढ़ी-चढ़ी थीं । सभी बन-ठनकर आयी थीं, सभी यथायोग्य नवागत दूल्हेके साथ हास्यविनोद करने लगीं

कोई जान-बूझकर गहनोंको झनकारती, कोई रत्नजटित भूषणकी चमकसे लोगोंकी आंखोंमें चकाचौंध पैदा करती थी। कोई हंसती, कोई बोलती, कोई घूंघटके भीतरसे दूल्हेकी ओर टकटकी बांध निहारती थी। मेरे प्राणनाथ यद्यपि गोरे सैनिकोंके बीच विजय प्राप्त करके बहुत रुपये घर ले आये हैं; कितने ही कर्नल और जनरलकी आंखोंमें धूल झोंककर लाभका अंश लूट लाये हैं, तथापि सुन्दरी स्त्रियोंकी पल्टन देखकर वे दंग हो गये, उनकी अक्ल चकरा गयी। तोपकी बलती हुई आगके स्थानमें तीव्र नयनाग्नि, तोपके भयंकर काले कुण्डली कृत धूमपुञ्जके बदले वह कुण्डली कृत काली कमनीय केश कादम्बिनी, बेण्ड बाजेके बदले, गहनोंका झङ्कार, जयघोषके बदले महावरसे रंगे पैरोंके पायजेबकी मधुर ध्वनि। जिस पुरुषने घोर संग्राम देखा है, वह भी हतज्ञान हो रहा था। इस भयंकर रणभूमिमें अपनी रक्षाके लिये उन्होंने मुझको चौकठके पास खड़ी देखकर इशारेसे बुलाया। किन्तु मैंने भी सिक्ख सेनापतिकी तरह विश्वासघातकताके इस युद्धमें उनकी सहायता नहीं की।

इस तरहकी सभामें अक्सर निर्लज्जताभरी हंसी-ठठोलीकी बहुतेरी बातें हुआ करती हैं यह मैं जानती थी। इसीसे कामिनी और मैं वहां नहीं गयी, बाहर ही

रही। द्वारके पास खड़ी होकर बीच-बीचमें भीतर झांकने लगी। अगर यह कहो कि निर्लज्जता-भरे व्यापारके वर्णनमें मैं क्यों प्रवृत्त हुई हूं तो उसका उत्तर यही है कि मैं हिन्दू रमणी हूं, मेरी समझमें यह सब बात निर्लज्जता-की जरूर हैं, किन्तु इस समयकी प्रचलित प्रथा, अंगरेजी रीतिरस्मका विचार करनेसे इस कुतूहलमें निर्लज्जताकी एक भी बात नहीं पायी जायगी।

मैं और कामिनी दोनोंने एक-एक बार झांककर देखा। पड़ासकी यमुना-बहन सभापत्नी बनकर बैठी है, उसकी उम्र पैंतालीस वर्षकी होगी। शरीर सांवला सा आंखें छोटी, पर चञ्चल, होंठ मोटा होनेपर भी रस-भरा हुआ था। जड़ाऊ भूषण वसनकी बहार, पैरोंमें महावरकी बहार, कालेमें लाल, जैसे यमुनामें उड़हुलके फूल खिले हों। सिरमें चिकने बालोंकी बहार थी। उसके बदनकी व्यासपरिधि असाधारण देखकर मेरे स्वामीने उसे नदी रूपा महिषी कहकर व्यङ्ग किया। मथुरावासी लोग यमुना नदीको कृष्णकी नदी-रूपा महिषी कहा करते हैं। उसी बातको लक्ष्य करके उन्होंने यह रसिकता की थी। किन्तु मेरी यमुना बहन अबतक कभी मथुरा नहीं गयी थी और न वह इन बातोंको खबर ही रखती थी महिषी शब्दका अर्थ भी नहीं जानती थी

उसने महिषी माने भैंस समझ लिया था और उस पशुके साथ अपने शरीरके सादृश्यपर लक्ष्य करके क्रोधसे कांप रही थी। इसका बदला चुकानेके लिये उसने मेरे स्वामीके समक्ष मुझे कोई प्रसङ्ग लाकर गाय कहा। उसी समय मैंने बाहरसे द्वारके भीतर मुंह करके पूछा, "यमुना बहन, क्या कह रही हो?"

यमुना—"कुछ तो नहीं, एक गाय।"

मैं—"गाय क्यों, उसकी क्या जरूरत है?"

कामिनी मेरे पास ही खड़ी थी, बोली—"बोलते-बोलते यमुना बहनका कण्ठ सूखकर काठ हो गया है। एक बार दूध पियेगी।"

इस हंसीकी चोटसे सभापत्नी आपेसे बाहर हो गयी। वह कामिनीपर आंख लाल करके बोली, "तू रत्ती भरकी छोकड़ी होकर सब हड्डियोंको एक ही लकड़ीसे क्यों चला रही हो?"

कामिनी—"मेरे सिवा तो कोई तुम्हें रिझाने नहीं जानता।

कहकर कामिनी वहांसे भग गयी। मैं भी वहांसे उठ भागी। फिर एक बार जाकर मैंने झांककर देखा, पड़ोसकी प्रेमा बहन जो वैद्य जातिकी थीं, अवस्था पैंसठ वर्षकी होगी, विधवा हुए पचीस वर्ष हुए होंगे, सब

गहने पहन राधिका बनकर आयी है। मेरे स्वामीको लक्ष्यकर उस कामिनीकुञ्जमें घूम रही है।

मैंने पूछा—"बहन, किसे खोज रही हो?"

वह—"मैं कृष्णाको खोज रही हूं।"

कामिनी—"तो ग्वालेके घर जाओ, यह तो कायस्थका घर है।"

रसिक-हृदया बूढ़ीने कहा—"कायस्थके घरमें ही मेरे कृष्ण मिलेंगे।"

कामिनी—"क्या तुमने सभी जातियोंके हाथ अपनी जाति बेच डाली है?"

प्रेमाको इस समय एक तेलीका अपवाद लगा था। कामिनीकी इस बातसे वह खौलते हुए तेलमें बैंगनकी भांति जल-भुनकर कामिनीको व्यङ्ग करके गाली देने लगी। मैं उसे शान्त करनेके लिये यमुना बहनको दिखा कर बोली, "क्रोध क्यों करती हो? तुम्हारे कृष्ण इसी यमुनामें कूद पड़े हैं।" आओ, मैं और तुम दोनों पुलिन (कछार) पर खड़ी होकर रोवें।

यमुना देवी "महिषी" शब्दका अर्थ समझनेमें जैसी पण्डिता थी, पुलिन शब्दका अर्थ बूझनेमें भी वैसी ही थी। उसने समझा, मैंने किसी पुलिन विहारीकी बातका इशारा करके उसके निष्कलङ्क सती-त्वके प्रति कट

आक्षेप किया है। उसने रुष्ट होकर कहा—"इसके भीतर पुलिन कौन ?"

इस मौकेपर मुझे भी कुछ दिल्लगी सूझी।

मैंने कहा—"जिसके अंगसे लगकर यमुना दिन-रात तरंगे लिया करती है, वृन्दावनमें लोग उसे पुलिन कहते हैं।"

फिर तरङ्गकी बातने आगमें घीका काम किया। यमुनाने तो कुछ समझा नहीं, खिसियाकर बोली, मैं तुम्हारी तरङ्ग फाङ्गको नहीं जानती, तुम्हारे पुलिनको भी नहीं जानती। मालूम होता है, तुम डाकुओंसे यह सब रङ्ग-रहस्यकी बातें सीख आई हो

उस सभामें रङ्गमयी नामकी मेरी एक समानवयसकी सखी थी, वह बोली, यमुना बहन, इतना क्रोध क्यों ? पुलिन नदीके कछारको कहते हैं। क्या तुम्हारे दोनों तरफ कछार हैं।

यमुनाकी भावज जिसका नाम चञ्चला था, घूंघट काढ़े पीछेमें बैठी थी। वह घूंघटके भीतरसे मीठे-मृदुल स्वरमें बोली, "कछार रहता तो अच्छा ही होता। कुछ स्वच्छता देखनेमें आती। अभी तो केवल काले जलकी कालिन्दी कलकल कर रही है।"

कामिनी—"मेरी यमुना बहनको क्यों तुम लोग इस प्रकारके बीचमें घसीट रही हो ?"

चञ्चला—"यह कहना ही व्यर्थ है। ननदके साथ मैं ऐसा क्यों करूंगी? उनके भाईके पैर पड़कर कहूंगी कि वे अपनी बहनको मरघटमें छोड़ आवें।"

रङ्गमयी—"बहूजी, दोनोंमें फर्क क्या हुआ?"

चञ्चला—"श्मशानमें तो कुत्ते गीदड़ोंका उपकार होगा। कछारपर गाय भैंस चरेंगी, इससे उनका क्या उपकार होगा?"

भैंसकी बात बोलते समय बहूने एक बार घूंघट उठाकर ननद्की ओर सहास्य कटाक्ष दृष्टिसे देखा।

यमुना—"एक सौ बार वही बात बोलना अच्छा नहीं मालूम होता। जिनको भैंस अच्छी लगती हो वही भैंसका नाम जपा करें।"

प्रेमा बहनका ध्यान इस ओर नहीं था। उसने पूछा, "भैंसकी बात क्या हो रही है?"

कामिनीने कहा—"किसी मुल्कमें तेली लोग भैंसको कोल्हूमें जोतते हैं, यही बात हो रही है।"

कहकर कामिनी भग गयी। बार-बार तेलीकी बात छेड़कर प्रेमाके हृदयमें आघात पहुंचाना अच्छा नहीं था, किन्तु कामिनी दुश्चरित्र मनुष्यको देखना नहीं चाहती थी। प्रेमा क्रोधसे अन्धी होकर कुछ न बोल उ बाबूके पास जा

तब मैंने कामिनीको पुकारकर कहा—आकर देख—कामिनी, इस बार प्रेमाने कृष्णको पाया है।

कामिनीने दूरसे कहा, यह क्या नयी बात है, इसे कृष्ण पाये ढेर दिन हुए।

इसके बाद मैंने कुछ शोरगुल होते सुना। अपने स्वामीका कण्ठ स्वर सुन पड़ा। वे किसीको हिन्दीमें डांट-डपट बता रहे थे, हम देखने गयीं। देखा, एक लम्बी दाढ़ी-वाला मुग़ल घरके भीतर घुस आया है; उ-बाबू उसे भगानेके लिये धमका रहे हैं। मुगल नहीं जाता है। कामिनीने द्वारपरसे पुकारकर कहा—जीजा साहब, क्या बदनमें ताकत नहीं है?"

उ-बाबू—है क्यों नहीं?

कामिनी—तो मुगलको धक्का देकर घरसे बाहर क्यों नहीं कर देते?

यह सुनते ही मुगल घरसे निकल भागा। भागते समय मैंने लपककर उसकी दाढ़ी पकड़ी। नकली दाढ़ी गिर पड़ी। मुगलने कहा—"मैं मरी और क्या! ऐसे गँवारको लेकर तुम गृहस्थी कैसे चलाओगी?" कहकर वह भग गयी। मैंने वह कृत्रिम दाढ़ी ले जाकर यमुना बहनको उपहार दिया। उ-बाबूने पूछा, "क्या माजरा है?"

कामिनी—माजरा क्या है? यह लो, तुम्हीं यह दाढ़ी लगाकर चौपाया बन जंगलमें घास चरना आरम्भ करो।

उ-बाबू—क्यों, वह मुगल नकली था?

कामिनी—किसका सामर्थ्य जो ऐसी बात बोले? श्रीमती कामसुन्दरी दासी क्या मुगल हो सकती है? वह तो दिल्लीसे आया हुआ कोई सच्चा मुगल था।

सभी लोग खिल-खिलाकर हंसने लगे; मानों उस घरमें हंसीका स्रोत बह गया। जब मैं उस घरसे लौटी आ रही थी, तब देखा कि महल्ले की व्रजमोहिनी दासी एक पुरानी साड़ी पहने बच्चेको गोदमें लिये उ-बाबूके पास जाकर अपना दुखड़ा रोने लगी। मैं बड़ी गरीबिनी हूं, भरपेट खानेको भी नहीं मिलता। बच्चेको क्या खिलाकर पोसूंगी। उ-बाबूने दया करके उसे कुछ दिया। कामिनी और मैं दोनों द्वारके दोनों ओर खड़ी थीं। जब वह द्वार पार करके बाहर आयी; तब कामिनीने कहा—अरी भिखमंगिन, क्या तुम यह नहीं जानती कि बड़े आदमीसे भिक्षा पाने-पर दरबानको कुछ घूंस देना होता है।

व्रजमोहिनी—दरबान कौन है?

कामिनी—हम दोनों।

व्र०मो०—कितना हिस्सा चाहिये?

कामिनी—कितना पाया है

ब्र०मो०—दस रुपये।

कामिनी—तो आठ मुझे और आठ इसे—१६) रु० दिये जाओ।

ब्र०मो०—नफा तो मुझे खूब हुआ!

का०—अद्दे घरकी शिक्षामें नफा नुकसानकी बात सोचनेसे कैसे चलेगा? कभी-कभी अपने घरसे भी कुछ देना पड़ता है।

ब्रजमोहिनी बड़े नामी रईसकी स्त्री थी। झट उसने पाकेटसे १६) रु० निकालकर दे दिये। हमने रुपये यमुना बहनको देकर कहा—तुम लोग इन रुपयोंसे मिष्टान्न मोल लेकर खाना।

स्वामीने पूछा—बात क्या है?

उसी क्षण ब्रजमोहिनी बच्चेको धर भेज बनारसी साड़ी पहनकर आ बैठी। फिर हंसीकी धूम मच गयी।

उ०बाबूने कहा—क्या यह नाटक हो रहा है?

यमुना बोली—नाटक नहीं तो क्या? देखते नहीं, कोई कालिय-दमनका पार्ट लेता है, कोई कलङ्क भञ्जनका, कोई मधुर-मिलनका,—कोई केवल भागनेका ही स्वांग दिखा रही है।

उ बाबू—केवल भागनेका पार्ट किसने लिया है?

यमुना—और कौन, कामिनीने।

कामिनी व्यङ्ग बातोंसे सबकी खबर लेने और साथ ही पान-इलायची और इत्र बांटकर सबको प्रसन्न करने लगी। तब सभीने मिलकर उसे पकड़ रखा और कहा,- तू जो इतनी देरसे भागी-भागी फिरती थी सो क्यों?

कामिनी—भागती नहीं तो क्या करती, तुम लोगोंके डरसे भागी फिरती थी। तुम लोगोंसे न डरूं तो किसे?

उ-बाबू—कामिनी, तुम्हारे साथ क्या बात थी, तुमने क्या वादा किया था?

कामिनी—क्या वादा किया था? मुझे तो याद नहीं है।

उ-बाबू—यही कि तुम नाचोगी।

कामिनी—मैं तो नाच चुकी।

उ-बाबू— कब?

का०—दोपहरको।

उ०—कहां नाची?

का०—अपने घरके भीतर किवाड़ बन्द करके।

उ०—किसीने देखा भी?

का०—नहीं, किसीने नहीं।

उ०—कोई देखे नहीं, यह बात तो न थी।

का०—तो यह बात भी न थी कि तुम लोगोंके सामने

आकर पेशवाज पहन कर नाचूंगी, नाचना स्वीकार किया था, सो नाची, अपनी बात पूरी की। तुम लोगोंने नहीं देखा, यह तुम्हारे अदृष्टका दोष है। अच्छा, यह कहिये कि मैंने जो जंजीर खरीद रक्खी है उसका क्या होगा?

कामिनीने किसी तरह नाचनेसे अपना पिण्ड छुड़ाया तो मेरे स्वामी गानेके लिये विवश किये गये। सभासे आज्ञा मिली कि उन्हें गाना होगा। उन्होंने पंजाबमें पश्चिमी गीत गाना सीखा था। उन्होंने एक ख्याल गाया। सुनकर सारी नारि मण्डली हंस पड़ी। फिर उसने ठुमरी गानेकी फरमाइश की; किन्तु वह ठुमरी गानेमें अपटु थे, इसलिये उनके इस गानसे स्त्रियां सन्तुष्ट न हुईं।

इस प्रकार हंसी खेलमें आधी रात बीत गयी। यह परिच्छेद न लिखनेसे भी और बात लिख सकती थी, किन्तु देखती हूं, इस देशकी ग्राम्य नारियोंके जीवनका यह सौभाग्य अब लुप्त हुआ जा रहा है, यह अच्छा ही हुआ है। क्योंकि इसके साथ कदाचित् निर्लज्जता, अश्लीलता या दुर्नीति आकर मिलती है। लेकिन जो लुप्त हुआ जा रहा है, उसका एक चित्र खींचनेकी आशासे इस परिच्छेदको लिखा है। पर यह नहीं जानती कि अनेक स्थानोंमें कुरीतिका लोप हुआ या नहीं। अगर न हुआ

हो तो जो दामाद देखनेके हेतु स्त्रियोंको जानेसे नहीं रोकते उन लोगोंके आंख-कान खोल देना आवश्यक है। मछली पकड़ना है नहीं, फिर नीर छूने जायं क्यों? उनके लिये इतना इशारा कर देना मैं उचित समझती हूं।

बाईसवां परिच्छेद



उपसंहार

दूसरे दिन मैं पालकीकी सवारीसे स्वामीके साथ ससुराल गयी। स्वामीके साथ, जाना कुछ कम सुख-सौभाग्यकी बात नहीं है। किन्तु उस दफे जो जा रही थी, वह एक और ही प्रकारका सुख था, जो मैंने कभी नहीं पाया था, वही पानेकी आशासे जा रही थी। एक कविका काव्य और दूसरा धनीका धन समझो। धनीका धन क्या कविके काव्यकी समता कर सकता है? जो धन कमाते-कमाते बूढ़े हो गये हैं, काव्यका सुख जिन्होंने कभी पाया नहीं, वे भी ऐसी बात नहीं बोलते। उनका कहना है कि, फूल जबतक पेड़में लगा रहता है, तबतक सुन्दर मालूम होता है; तोड़ लेनेपर वह वैसा सुन्दर नहीं रहता। स्वप्न जैसा सुखद होता

..., स्वप्नकी सफलता क्या उतनी सुखद होती है? आकाश जैसे वास्तवमें नीला नहीं है, हमलोग सिर्फ नीला देखते हैं, धनका भी यही हाल है। धन सुखकी वस्तु नहीं है हमलोग उसे सुखकी सामग्री मान बैठे हैं। यथार्थ सुख तो काव्यमें ही है। काव्य आशा है; धन भोगमात्र। वह भी सबके नसीबमें नहीं। बहुतेरे धनी मनुष्य तो केवल धनागारके प्रहरीमात्र होते हैं। मेरे एक कुटुम्ब ऐसे धनीको 'ट्रेजरी गार्ड' कहा करते हैं।

तथापि मैं आनन्दसे उमगती हुई ससुराल गयी। इस बार वहां कुशलपूर्वक पहुंची। मार्गमें कोई विघ्न-बाधा उपस्थित नहीं हुई। स्वामीने अपने मां-बापसे सब बातें सविस्तर कह सुनाईं। रमण बाबूके हाथका लिखा पुलिन्दा खोला गया। उनकी लिपिके साथ मेरी सब बातें मिलीं। मेरे सास-ससुर प्रसन्न हुए। समाजके लोगोंने भी सब वृत्तान्त जाननेपर कोई बखेड़ा खड़ा नहीं किया।

मैंने ये सब बातें विस्तारपूर्वक सुभाषिणीको पत्र द्वारा लिख भेजीं। सुभाषिणीके लिये मेरा मन हमेशा रोया करता था। मेरे स्वामीने मेरे अनुरोधसे हीराके लिये पांच सौ रुपये रमण बाबूके पास भेज दिये। शीघ्र सुभाषिणीका उत्तर पाया। उत्तर आनन्दसे परिपूर्ण था। सुभाषिणीने रमण बाबूके हाथसे चिट्ठी लिखवायी थी।

लेकिन बात उसमें सब सुभाषिणीकी ही थी। यह वाक्य-विन्याससे ही समझमें आ गया। उसने सब किसीके समाचार लिखे थे, जिनमें दो-एक यहाँ उद्धृत करती हूं। उसने लिखा था, हीराने पहले किसी तरह रुपया लेना कबूल नहीं किया, कहने लगी, मेरा लोभ बढ़ जायगा। मान लो, मैंने वह अच्छा ही काम किया, लेकिन इस तरहका काम तो बुरा ही होता है। अगर मैं लोभमें पड़कर बुरा काम करनेमें प्रवृत्त होऊँ? मैंने हरामुखीको समझाया, कि झाड़ू खाये बिना क्या तू यह काम करती? क्या सभी समय तू मेरे हाथका झाड़ू खायगी? बुरा काम करते समय क्या मैं तुझको उसी तरह सिर्फ मुँहपर झाड़ू मारूंगी? उसके साथ-साथ तुझे दो गालियाँ भी तो खानी पड़ेंगी। तुमने अच्छा काम किया था, इनाम ले। इस प्रकार बहुत समझाने बुझानेपर उसने रुपया लिया है। अब अनेक प्रकारके व्रत-उपवास करनेका संकल्प किया है। जबतक तुम्हारा यह समाचार नहीं आया था, वह हंसती न थी, अब उसकी हंसीकी बाढ़से घरके लोग घबरा उठे हैं।

बूढ़ी महराजिनके विषयमें सुभाषिणीने लिखा; जब तुम अपने स्वामीके साथ चुपचाप चली गयी, तब बूढ़ीने बड़ा हल्ला मचाया। कहने लगी, मैं तो कबसे जानती हूं, वह बड़ी चालाक है, उसकी चाल-चलन ठीक नहीं है,

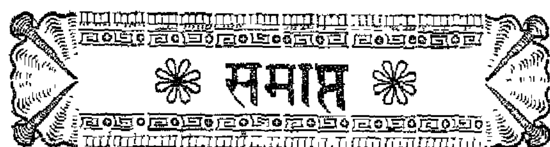
कितनी बार मैंने कहा कि ऐसी दुश्चरित्रा छोटे स्वभावकी स्त्रीको तुम लोग अपने घरमें मत रखो, तब तो किसीने इस भिखारिन ब्राह्मणीकी बातपर कान नहीं दिया। सब लोग कुमुदिनीको भोली-भाली समझ उसके पीछे अपनेको भूले हुए थे। अब मेरी कही हुई बात हाथ आयी। यौंही और भी कितनी ही बातें बकीं। इसके बाद जब उसने सुना कि "वह अपने स्वामीके साथ गयी है, वह बड़े आदमीकी बेटी और बड़े घरकी बहू है-अब अपने घर पहुंच गयी है।" तब कहने लगी—अरे! मैं तो बराबर कह रही हूं कि वह किसी बड़े घरकी लड़की है। छोटे घरकी लड़कीका भला ऐसा शीलस्वभाव हो सकता है? जैसा सुन्दर रूप है, वैसा ही मिजाज है। वह साक्षात् लक्ष्मी है, भगवान उसका भला करें, वह अपने स्वामीका सुहागिन बनी रहे। देखो, बहूजी मुझे भी कुछ भेज देनेको लिख दो।

मांजीके सम्बन्धमें सुभाषिणीने लिखा, उन्होंने तुम्हारा यह सब समाचार पाकर हर्ष प्रकट किया है, किन्तु मुझे और र-बाबूको धिक्कारा भी है। कहती हैं, वह जो इतने बड़े घरकी लड़की थी, सो तुम लोगोंने पहले मुझसे क्यों नहीं कहा? मैं उसे खूब यत्नसे रखती। और तुम्हारे स्वामीकी भी कुछ निन्दा करती हैं—वह उन्हींकी स्त्री ही क्यों न हो उसे ले जाकर उन्होंने अच्छा काम नहीं किया।

मालिक रामदत्तकी बात सुभाषिणीने खुद अपने हाथसे टेढ़े-मेढ़े हरफोंमें लिखी थी, बड़ी कठिनाईसे उसे पढ़ी। मालिक बूढ़ेबाबूने नकली क्रोधके साथ तिरस्कार करके गृहिणीसे कहा कि तुम्हींने कुछ खरी-खोटी कहकर वैसी सुन्दरी रसोइयाको भगा दिया है। गृहिणीने कहा—मैंने भगा दिया है, तो अच्छा ही किया है। क्या तुम सुन्दरी का रूप धो धोकर चाटते। मालिकने कहा "कैसे कहूं! न चाटता तो न सही, रूप देखकर आंखें तो ठंडी करता। काले रूपका ध्यान करते-करते जी ऊब गया है।" गृहिणी-ने चारपाई पकड़ी, उस दिन उठी नहीं, न कुछ खाया, न कुछ पिया। मालिकने उन्हें चिढ़ाया है, इस बातको वह नहीं समझ सकीं।

इसके अनन्तर मैंने महराजिनजी और अन्यान्य भृत्योंके लिये कुछ-कुछ भेज दिया। सुभाषिणीके साथ फिर एक बार भेंट हुई थी। उसकी लड़कीके ब्याहके अवसरमें विशेष आग्रह करके स्वामी महाशय मुझे ले गये थे। सुभाषिणी-की लड़कीको मने गहने पहनाये, मांजीको उपयुक्त उपहार दिया—जो जिस योग्य थे, उनके साथ वैसा ही व्यवहार किया। सब लोग सन्तुष्ट हुए, केवल मांजी मुझपर और मेरे स्वामीपर अप्रसन्न थीं। उनके पुत्र रमण बाबूका खाना-पीना ठीक नहीं होता, यह बात उन्होंने कई बार मुझ

सुनायी। मैंने अपने हाथसे कुछ पकवान बनाकर रमण बाबूको खिलाया। लेकिन फिर कभी वहां नहीं गयी, रसोई बनानेके डरसे नहीं, बूढ़ी मांजीके मनोदुःखके भयसे। गृहिणी और गृहाधीश (रामदत्त) को परलोक सिधारे ढेर दिन हुए। किन्तु तब भी वहां जानेका सुयोग नहीं मिला मैं सुभाषिणीको भूली नहीं हूं। इस जन्ममें भूलूंगी भी नहीं। सुभाषिणीके सदृश मधुर स्वभावकी स्त्री इस संसारमें दूसरी नहीं देखी।



उपन्यास-सम्राट् श्रीयुक्त बंकिमचन्द्र चटर्जी

:के:

प्रसिद्ध ग्रन्थ

बंकिम बाबूके लिखे उपन्यासोंका रसास्वादन हिन्दीके जिन पाठकोंने किया है वे उनकी प्रशंसा किये बिना नहीं रह सकते। यद्यपि हिन्दीमें उनके ग्रन्थोंके अनुवाद निकल चुके हैं; परन्तु किसीमें भाषा दोष है तो किसीका मूल्य ही इतना रख दिया गया है कि वे सर्वसाधारणके हाथोंतक नहीं पहुंच पाते। इसलिये हमने उनके प्रसिद्ध ग्रन्थोंको क्रमशः निकालनेका विचार किया है। 'इन्दिरा' आपके हाथमें है। 'देवी चौधरानी' शीघ्र ही सेवामें भेंट की जायगी।

९—देवी चौधरानी

लेखक—श्रीयुक्त बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय

यह भी बंकिम बाबूके इसी नामके उपन्यासका अनुवाद है। इसकी घटना बड़ी मनोरंजक और वर्णन-शैली बड़ी हृदयग्राही है। इसमें कहीं रसिकता है, कहीं कवि-कल्पना है, कहीं वर्णवैचित्र्य है, कहीं गम्भीरता है, कहीं आध्यात्मिकता है और निःस्वार्थ परहित व्रतका ज्वलन्त उदाहरण है। बंकिम बाबूकी असाधारण कल्पना-शक्तिका यह जीता-जागता चित्र है। यह उपन्यास घटनाओं, उपदेशों और वर्णन-वैचित्र्यका भण्डार है। इस उपन्यासके जोड़का दूसरा उपन्यास मिलना कठिन है। सुन्दर चिकने कागजके २०० पृष्ठोंकी पुस्तकका मूल्य केवल ॥)